

प्रकाशक,
नाथूराम प्रेमी,
मंत्री, माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमाला,
ह्रीरावाग, मुंबई नं. ४



मुद्रक,
चितामणि सखाराम देवल,
'वाम्यर्धवेभव प्रेस,' सर्व्हेंद्रम ऑफ इंडिया,
सोसायटीज् हॉम, सेंटस्ट रोड,
गिरगाव-वाम्यर्ध

ग्रन्थ-परिचय ।

इस संग्रहमें प्रायश्चित्त-विषयक चार ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं। सभी तक इस विषयका कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था और न इन विषयके हस्तलिखित ग्रन्थ ही सर्वत्र सुलभ हैं। अत एव जैनधर्मके जिज्ञासुओंके लिए यह संग्रह दिव्यकुल ही अपूर्व होगा। इसके द्वारा एक ऐसे विषयकी जानकारी होगी जिसमें जैन-धर्मके बड़े बड़े विद्वान् भी अपरिचित हैं।

छेदपिण्ड, छेदशास्त्र, प्रायश्चित्त-बुलिका और अकलङ्क-प्रायश्चित्त ये चार ग्रन्थ इस संग्रहमें हैं। 'छेद' शब्द प्रायश्चित्तका ही पर्यायवाची है।

१-छेदपिण्ड ।

यह ग्रन्थ प्राकृतमें है। इसकी मस्कृतच्छाया श्रीयुक्त प० पद्मालालजी म्नेनी द्वारा करवाई गई है। ग्रन्थके अन्तकी गाथा (न० ३९०) के अनुसार इसका गाथापरिमाण ३३३ और श्लोक (अनुष्टुप्) परिमाण ४२० होना चाहिए, परन्तु वर्तमान ग्रन्थकी गाथासूचना ३६२ है। जान पड़ता है कि उस ३६० अक्षरकी गाथाका पाठ लेखकेवादी कृपासे कुछ अक्षुब्ध हो गया है। उसमें 'नेमि-नर,' की जगह 'वासुमित्र,' या इसीसे मिलना जुलना हुआ कोई और पाठ होना चाहिए। क्योंकि ३० अक्षरोंके श्लोकके हिसाबसे अक्ष भी इसकी आकम्पाया ४२० के ही लगभग है और ३३३ गाथाश्लोकके ४२० श्लोक ही भी नहीं मन्ने हैं। अन्वयान्य प्रतियोंके देखनेसे इस ग्रन्थका संगोधन हो जायगा।

इस ग्रन्थका संगोधन दो प्रतियों परसे किया गया है, एक अजयपुरके पाठशालाके मठकी प्रतिपरसे—जो प्रायः शुद्ध है—और दूसरी 'दा० भ. पटवर्धन—अभिलेखालय रिम्वं इन्स्टिट्यूट' पुणेकी प्रतिपरसे—जो बहुत ही अशुद्ध है। ग्रन्थके छान चुकने पर श्रीमान् प्रह्लादशरी जीवरूपमादजीजी कृपासे हमें इन्द्रनिसरहितकी भी एक प्रति मिली जो मन्नेने दिखाने लिखवा कर भेजी थी। परन्तु वह बहुत ही अशुद्ध लिखी गई है, इस कारण उसमें कोई सहायता नहीं ले जा सकी।

यह ग्रन्थ इन्द्रनिसर-परिचय का बीया काष्ठका अक्षर उतका एक भाग है,

परन्तु अनेक पुस्तकालयोमे यह स्वतंत्र रूपसे भी मिलता है । इसके कर्ता इन्द्र-
नन्दि योगीन्द्र हैं, जो संभवतः नन्दिसंघके आचार्य थे । यह नहीं मालूम हो सका
कि उनके गुरुका क्या नाम था और वे निश्चय रूपसे कब हुए हैं ।

अग्र्यपार्य नामके एक विद्वान्ने शकसंवत् १२४१ (शाकाब्दे विधुवार्धिनेत्रहिमगौ
सिद्धार्थसवत्सरे) में 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' नामका संस्कृत ग्रन्थ बनाया है ।
उसकी प्रशस्तिमें लिखा है.—

वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो,
य पूर्व गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्दार्जित ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धिततः,
तेभ्यः स्वाहृतसारमध्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥

अर्थात् वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर,
हस्तिमल्ल और एकसन्धिके ग्रन्थोंसे सार भाग लेकर मने यह पूजाक्रम रचा है ।
इससे मालूम होता है कि अग्र्यपार्यसे पहले उक्त आचार्योंके ऐसे ग्रन्थ वर्तमान थे
जिनमे पूजाविषयक विधान थे अथवा जो केवल पूजाविषयक ही थे और
उनमे इन्द्रनन्दिका भी कोई पूजाग्रन्थ था । और ऐसी अवस्थामें इन्द्रनन्दिका
समय शक संवत् १२४१ अर्थात् विक्रमसंवत् १३७६ के पहले निश्चित होता है ।

यह छेदपिण्ड जिस इन्द्रनन्दिसंहिताका एक भाग है, उसमें भी एक अध्याय
पूजाविषयक है और उषका नाम पूजाप्रक्रम है । इससे यही खयाल होता है कि
अग्र्यपार्यने जिनका उल्लेख किया है वे यही इन्द्रनन्दि होंगे । परन्तु इसी इन्द्र-
नन्दिसंहिताके दायभाग प्रकरणकी अन्तिम गाथाओंसे इस विषयमे कुछ सन्देह
हो जाता है । वे गाथायें ये हैं —

पुत्रं पुञ्जविहाणे जिणसेणाद्वीरसेणगुरुजुत्तइ ।
पुञ्जस्सयाय (१) गुणभद्रसूरिहिं जह तहुद्धिहा ॥ ६६ ॥
वसुणादि-इदणादि य तह य सुणी एयसंधि गणिनाहं (हिं)
रचिया पुञ्जविही या पुव्वकमदो विणिद्धिहा ॥ ६४ ॥
गोयम-समतभद्र य अयलंक सु माहणादिमुणिणाहिं ।
वसुणादि-इदणादिहिं रचिया सा संहिता पमाणाहु ॥ ६५ ॥

मंहिताकी जिस प्रतिमे हमने ये गाथायें लिखी हैं वह बहुत ही अशुद्ध है और इस कारण यद्यपि इनसे पूरा पूरा और स्पष्ट अर्थव्यवधान नहीं होता है, फिर भी ऐसा मान्य होता है कि इन इन्द्रनन्दिमंहितासे भी पहले कोई इन्द्रनन्दिमंहिता थी, जिसे इस मंहिताके कर्ता प्रमाण माननेको कहते हैं और इन्द्रनन्दिका बनाया हुआ कोई पुजाग्रन्थ भी था। यदि यह ठीक है और हमारे समझनेमें कोई प्रम नहीं है तो फिर छेदपिटके कर्ताका समय अश्वपार्थिके पहले नहीं माना जा सकता।

इन गाथाओंमें वसुनन्दि, एकसन्दि, और माघनन्दिका भी नाम आया है। इनमेंसे वसुनन्दिका मर्मद विक्रमको चारहवीं शताब्दिके लगनग निवृत्त किया जा चुका है और एकसन्दि वसुनन्दिसे भी कुछ पीछे हुए है। अब रहे माघनन्दि, जो यदि वे कुन्दकुन्दाचार्यसे पहले कहे जानेवाले सुप्रसिद्ध माघनन्दि आचार्य नहीं हैं और दूसरे माघनन्दि हैं जिन्होंने माघनन्दिश्रावणचार नामक सक्तन-कण्ठी ग्रन्थकी रचना की है और जिनकी बनाई हुई एक मंहिताका भी उद्धृत स्व० बाबा दुर्लभचन्द्र ने अपनी ग्रन्थमूर्त्तमें किया है, तो उनका समय कर्नाटक-कविचरित्रके कर्ताके वि० मन् १३१७ निश्चय किया है और ऐसी दगामे छेद-पिटके कर्ताका समय उनमें पीछे विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके बाद मानना होगा। परन्तु जब तक यह पूर्वानुमान निश्चय न हो जाय कि कर्नाटक-कविचरित्रके कर्ताके जिनका समय निश्चय किया है उनकी उरज रहनेकी उक्त गथाओंमें है, तब तक इस पिटके समय पर आशय जोर नहीं दिया जा सकता। फिर भी यह बात तो निश्चयपूर्वक ही जाना सकती है कि छेदपिटके कर्ता विक्रमकी १३ वीं शताब्दिके पहलेके तो कदापि नहीं हैं।

जिनेन्द्रकल्याणशुद्ध और इन्द्रनन्दिमंहिताके पूर्वानुमानों और गथा-ओंमें जिन जिन आचार्योंका उल्लेख है, उनमेंसे सबसे पीछे के आचार्योंके पूजा और स्तुति-ग्रन्थोंका अस्तित्व अर्थात्क है, ऐसा सर्वोप दाय दुर्लभचन्द्र ने संस्कृत ग्रन्थ-मूर्त्तसे मान्य होता है। पर मूर्त्त हमने उक्त सूची रचिये मन् १९०४ की

१ देखो जैनहितो भाग १२, पृ० १९०।

२ राजतरुमसुद्ध नामक ग्रन्थ में माघनन्दि आचार्यका बनाया हुआ है। यह माघनन्दिग्रन्थमालामें भी उल्लेख है।

लिखी हुई प्रतिपरसे नकल की थी । हम नहीं कह सकते कि यह सूची कहाँ तक प्रामाणिक है; फिर भी सुना गया है कि वावाजीने जगह जगहके ग्रन्थभाण्डारोको स्वयं देखकर इसे तैयार किया था । कई ग्रन्थोंके नामके साथ यह भी लिखा है कि उक्त ग्रन्थ अमुक जगह मौजूद है ।

| | | |
|-------------------------|--------|------------------------------|
| १ वीरसेनस्वामी | ... | पूजाकल्प । |
| २ वसुनन्दिस्वामी | ... | संहिता । |
| ३ माघनन्दि | | सहिता (वृन्दावनके घर है) । |
| ४ जिनसेन | | पूजाकल्प, पूजासार । |
| ५ इन्द्रनन्दि | | पूजाकल्प (सस्कृत), सहिता । |
| ६ गुणभद्र | | पूजाकल्प । |
| ७ देवनन्दि (पूज्यपाद) | ... | पूजाकल्प । |
| ८ एकसन्धि | | पूजाकल्प । |
| ९ हस्तिमल्ल | | गणधरवल्लय—पूजाकल्प । |

इनमेसे वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र और पूज्यपादके पूजाविषयक स्वतंत्र ग्रन्थोका उल्लेख अभी तक किसी भी ग्रन्थमें देखनेमें नहीं आया है । इस लिए इस बातकी बड़ी भारी आवश्यकता है कि उक्त ग्रन्थ संग्रह किये जायँ और उनका अच्छी तरह स्वाध्याय किया जाय । संभव है कि वीरसेन, जिनसेन आदि नामोके धारक अन्य आचार्योंने इनकी रचना की हो । क्योंकि हमारे यहाँ एक नामके अनेक आचार्य होते रहे हैं ।

इन्द्रनन्दि नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं । उनमेसे एक तो वे हैं जिनका उल्लेख गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ३९६ वीं गाथामें किया गया है और जिनके पास सिद्धान्तग्रन्थोका श्रवण करके कनकनान्दि मुनिने ' सत्त्वस्थान ' की रचना की है.—

वर इन्द्रादिगुरुणो पासे सोऽजुण सयलासिद्धंतं ।

सिरिकणयणदिमुणिणा सत्तटाणं समुद्धिदं ॥ ३९६ ॥

गोम्मटसारके कर्ताका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दि है, अतएव ये इन्द्रनन्दि लगभग इसी समयके आचार्य हैं ।

श्रवणमेलोलकी मल्लियेणप्रशस्तिमे लिखा है:—

दुरितग्रहनिग्रहाद्भयं यदि भो भूरिनरेन्द्रवन्दितम् ।
ननु तेन हि भव्यदेहिनो मजत श्रीसुनिमिन्द्रनन्दिनम् ।

यह प्रशस्ति शक संवत् १०५० (वि० सं० ११८५) में उत्कीर्ण की गई है, अतः संभव है कि गोम्मटसारोद्धिखित इन्द्रनन्दि, और इस प्रशस्तिमें जिनको प्रशंसा की गई है वे इन्द्रनन्दि, दोनों एक ही हो ।

‘श्रुतावतार’ के कर्ता भी इन्द्रनन्दि नामके आचार्य हैं । हमारा अनुमान है कि ये भी गोम्मटसार और मल्लियेणप्रशस्तिके इन्द्रनन्दिसे अभिन्न होंगे । क्यों कि श्रुतावतारमें वीरसेन और जिनेसेन आचार्य तककी ही सिद्धान्त-रचनाका उल्लेख है । यदि वे नेमिचन्द्र आचार्यसे पीछे हुए होते, तो बहुत संभव है कि गोम्मटसारका भी उल्लेख करते ।

नीतिसार (समयभूषण) के कर्ता भी इन्द्रनन्दि नामके आचार्य हैं, परन्तु वे गोम्मटसारके कर्ताके पीछे हुए हैं, क्यों कि उन्होंने नीतिसारके ७० वें श्लोकमें नेमिचन्द्रका उल्लेख किया है (प्रभाचन्द्रो नेमिचन्द्र इत्यादि मुनिसत्तमैः) । अत एव वे पहले इन्द्रनन्दि तो नहीं हो सकते । बहुत संभव है कि वे और इस इन्द्रनन्दिसंहिताके कर्ता एक ही हों ।

२-छेदशास्त्र ।

इसका दूसरा नाम ‘छेदनवृत्ति’ भी है । क्यों कि इसमें नववृत्ति या ९० गायार्थ हैं । यह भी प्राकृतमें है । इसके साथ एक छेटीसी वृत्ति भी है । परन्तु इससे न तो मूलग्रन्थके कर्ताका नाम मालूम हो सकता है और न वृत्तिके कर्ताका । और ऐसी दशमें इसके बननेका समय तो निश्चित ही क्या हो सकता है । इस ग्रन्थका भी सम्पादन और संशोधन केवल एक ही प्रतिके आधारसे हुआ है और यह प्रति बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरका वह प्राचीन गुटका है जो अतिशय जीर्ण शीर्ष गलितपृष्ठ होकर भी प्रायः शुद्ध है और हमारे अनुमानसे जो ४००-५००

(१) श्रुतावतारके मुद्रित पाठमें जिनेसेनके बदले ‘जयसेन’ है ।

(२) मुद्रित ग्रन्थ ९४ गायार्थमें है ।

वर्ष पहलेका लिखा हुआ है । इसकी दूसरी प्रति प्रयत्न करनेपर भी कहीं प्राप्त न हो सकी ।

इसकी भी संस्कृतच्छाया पं० पन्नालालजी सोनीद्वारा कराई गई है ।

३-प्रायश्चित्त-चूलिका ।

यह ग्रन्थ संस्कृतमें है और सटीक है । मूल ग्रन्थकी श्लोकसंख्या १६६ है । यह भी केवल एक ही प्रतिके आधारसे छपाया गया है और वह प्रति पूनेके 'भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट' की है जो प्रायः अशुद्ध है और संवत् १९४२ की लिखी हुई है । दूसरी प्रति नहीं मिल सकी ।

इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें लिखा है.—

यः श्रीगुरूपदेशेन प्रायश्चित्तस्य सग्रहः ।

दासेन श्रीगुरोर्द्वधो भव्याशयविशुद्धये ॥ १

तस्यैषाऽनूदिता वृत्तिः श्रीनन्दिगुरुणा हि सा ।

विरुद्धं यदभूदत्र तत्क्षाम्यतु सरस्वती ॥ २

इससे मालूम होता है कि मूलग्रन्थके कर्ता श्रीगुरुदास हैं और वृत्तिके कर्ता श्रीनन्दिगुरु हैं । मूलकर्ताका नाम विल्कुल अपरिचितसा और विलक्षणसा मालूम होता है । बल्कि हमें तो इसके नाम हेनिमे सन्देह होता है । 'दासेन' और 'श्रीगुरोः' ये दो पद अलग अलग पडे हुए हैं और इनका अर्थ यही होता है, कि श्रीगुरुके दासने बनाया । आश्चर्य नहीं जो टीकाकारको मूलकर्ताका नाम न मालूम हो और उन्होने साधारण तौरसे यह लिख दिया हो कि यह श्रीगुरुके एक दासका बनाया हुआ है और म इसकी वृत्ति रचता हूँ । और यदि 'श्रीगुरुदास' यह नाम ही है, तो हम अभी तक उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते हैं । इस नामके किसी भी आचार्यका नाम देखने सुननेमें नहीं आया । टीकाके कर्ता श्रीनन्दि गुरु हैं ।

वाराणसीश महाराज भोजके समयमें श्रीचन्द्र नामके एक विद्वान् हो गये हैं ।

(१) परिकर्म-सूत्र-पूर्वानुयोग-पूर्वगत-चूलिका पत्र । स्युर्दृष्टिवादभेदा —

—अभिधानचिन्तामणि ।

उनका 'पुराणसार' नामका एक ग्रन्थ है। वह विक्रम संवत् १०७० का बना हुआ है। उसकी प्रशस्तिमें उन्होंने लिखा है कि सागरसेन नामक आचार्यसे महापुराण पढ़कर श्रीमन्दिके शिष्य मुक्त श्रीचन्द्र मुनिने यह ग्रन्थ बनाया। इसी तरह आचार्य वसुनादिने अपने श्रावकाचार्यों भी एक श्रीमन्दिका उल्लेख किया है जो उनकी गुरुरन्तरामों थे।—श्रीमन्दि-नन्दनन्दि-नेमिचन्द्र और वसुनन्दि। वसुनन्दिका समय चारहवीं शताब्दि है, अतः उनके दादा गुरुके गुरु अवश्य ही उनसे १०० वर्ष पहले हुए होंगे और इस तरह संभवतः श्रीचन्द्रके गुरु और वसुनन्दिके परदादा-गुरु एक ही होंगे।

यदि प्राच्यश्रित्तटीकाके कर्ता श्रीमन्दिगुरु और श्रीचन्द्रके गुरु श्रीनन्दि एक ही हो, तो कहुना होगा कि यह टीका विष्णुकी ११ वीं शताब्दिमें बनी हुई है। और ऐसी दगामें मूल ग्रन्थ उससे भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

४-प्राच्यश्रित्त ग्रन्थ।

यह ग्रन्थ श्रीयुक्त ५० लक्षरामजी शास्त्रीकी लिखी हुई एक प्रतिमें आधारमें ही छपाया गया है। इसकी भी कोई दूसरी प्रति नहीं मिल सकी। इसमें केवल श्रावणके प्राच्यश्रित्तका निरूपण है और इसकी श्लोकसंख्या ८८ है। इसमें कोई प्रशस्ति आदि नहीं है। केवल आदि और अन्तमें इनके कर्ताका नाम श्रीमद्भक्तकलकदेव बतलाया गया हुआ है परन्तु जान पड़ता है कि ये कर्तव्य-राजकीतिक आदि महान् ग्रन्थोंके कर्ता अकलकदेवसे भिन्न कोई दूसरे तो विद्वान् होंगे और अशक्य नहीं यदि अक्षयक-प्रतिष्ठापठके कर्ता हैं इसके रचयिता हो। यह निश्चय हो चुका है कि अकलकप्रतिष्ठापठके कर्ता १० वीं शताब्दिके बाद हुए हैं। उन्हें नेमिचन्द्र, नन्दनन्द, एतान्दि-नेमिचन्द्र, नन्दन-धर्मनन्द, आनाधर-प्रतिष्ठापठ नामक विद्वान् चार, नेमिचन्द्र-प्रतिष्ठापठ आदि

(१) दादा हुलीचन्द्रजीकी मूलमें श्रीमन्दि मुनिके एक 'चरित्र' नामक श्रुतक ग्रन्थका उल्लेख है। उसमें यह लिखा है कि यह ग्रन्थ जयपुरमें बनी हुई है।

(२) जैनविहीनी भाग १४ पृष्ठा १९८-१९ में द्रव्यसूत्रकारके शब्दोंमें इस ग्रन्थ पर एक विद्वान् श्लोक लिखा है।

(३) देवी जैनविहीनी भाग १३, पृष्ठा १२२-२६।

ग्रन्थोंके बहुतसे पद्य अपने ग्रन्थमें दिये हैं । अत एव वे इन सब ग्रन्थकर्ताओंके पीछेके विद्वान् हैं, यह कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता ।

इस ग्रन्थकी रचना-शैलीमें भी मालूम होता है कि न तो यह उतना प्राचीन ही है और न भट्ट अकलकदेवकी रचनाओंके समान इसमें कोई प्रौढ़ता है । इसका 'मोक्कला' शब्द—जो यामों जगह आया है—संस्कृत नहीं किन्तु देश-भाषाका है और भद्रबाहु-महिना (राष्ट्र १, अ० १०) में भी यह 'मोक्कला' रूपमें व्यवहृत हुआ है । गुजराती और मारवाड़ीमें 'मोक्कला' शब्द विपुलता या अधिताका याचक है । लघु अभिप्रेक और मोक्कला अर्थात् वडा अभिप्रेक । कर्नाटक देशके भट्ट अकलकदेवकी रचनामें इस शब्दका प्रयोग असंगत ही दिसता है । और भी ऐसी कई बातें हैं जिनसे इसकी अर्वाचीनता प्रकट होती है । जैसे अनंठ अपरावोंके दण्डमें गौओंका दान और ताम्बूलदान । जहाँ तक हम जानते हैं अनेक आचार्योंने 'गौ-दान' का निषेध किया है । इसके सिवाय इस ग्रन्थका पहले तीन प्रायश्चित्त-ग्रन्थोंके साथ मतभेद भी मालूम होता है, उदाहरणके लिए इसका यह श्लोक देखिए —

जननीतनुजादीनां चाण्डालादिस्त्रियामपि ।

संभोगे सति शुद्धचर्यं पंचाशदुपवासका ॥

इसके अनुसार माता पुत्री चाण्डाली आदिके साथ व्यभिचार करनेवालेको पंचाशत् उपवास करना चाहिए, परन्तु अन्य तीनों प्रायश्चित्त-ग्रन्थोंमें इस पापका प्रायश्चित्त ३२ उपवास लिखा है । इसी तरह अन्यान्य पापोंके प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें भी मतभेद है । विद्वानोंको इस मतभेद पर भी खास तौरसे विचार करना चाहिए ।

अन्तमें मैं इतना और कहकर अपने निवेदनको समाप्त करूँगा कि ग्रन्थ-कर्ताओंके समय—निर्णयका मैंने जो यह प्रयत्न किया है वह अपनी छोटीसी बुद्धिके अनुसार किया है । बहुत सम्भव है कि मेरे अनुमान गलत हो और ऐसी दशामें मैं अपनी भूलोंको सुधारनेके लिए सदा तत्पर हूँ । परन्तु कोई महाशय यह समझ लेनेकी कृपा न करें कि मैं जान बूझकर किसीको प्राचीन या अर्वाचीन ठहरानेका प्रयत्न करता हूँ । मैं ऐसे प्रयत्नको बहुत ही घृणित समझता हूँ ।

बम्बई,
आषाढ सुदी ३
सं० १९७८ वि० ।

निवेदक—

नाथूराम प्रेमी ।

माणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला ।

यह ग्रन्थमाला स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्र हीराचन्द्रजीके स्मरणार्थ और जैनसाहित्यके उद्धारार्थ निकाली गई है ।

इसमें दिगम्बर जैन सन्प्रदायके अल्पसंख्य और दुर्लभ संस्कृत प्राकृत ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं ।

इसके द्वारा प्रकाशित हुए ग्रन्थ केवल लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं, जिससे उनका निलम्बा सर्व साधारणके लिए सुलभ हो जाय ।

अभीतक इस मालामें १८ ग्रन्थ निकल चुके हैं । यदि धर्मात्मा भाइयोंसे बराबर सहायता निलम्बी रही तो इसके द्वारा सैकड़ों अपूर्व ग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा ।

इसके ग्रन्थोंको खरीदकर पढ़ना, मन्दिरोंमें स्थापित करना और असमर्थ विद्वानोंको बौद्धना, यह प्रत्येक जैनोंका कर्तव्य होना चाहिए ।

ब्याह शादी उत्सव, प्रतिष्ठा मेला आदि ग्रन्थके मौके पर इस ग्रन्थमालाको सहायता देनी और दिलनी चाहिए ।

जो धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी कमसे कम २०० प्रतियों खरीद लेते हैं, उनका चित्र और स्मरणपत्र उस ग्रन्थकी तनाम प्रतियोंमें छपवा दिया जाता है ।

सौ रुपयेसे अधिक इकट्ठा सहायता करनेवालोंको मालाके सब ग्रन्थ भेटमें दिये जाते हैं ।

-मंत्री ।

माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमालामें
प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची ।

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-------|
| १ लघीगोत्रयादिसंग्रह (लघीयगोत्रयतात्पर्यश्रुति, लघुसर्वज्ञसिद्धि, बृहत्सर्वज्ञसिद्धि) | ... | ... | ... | १ॐ) |
| २ सागारधर्माभृत सटीक | ... | ... | ... | १ॐ) |
| ३ विक्रान्तकौरवीय नाटक | ... | . | ... | १ॐ) |
| ४ पादर्वनाथचरित्र | ... | ... | ... | ११) |
| ५ मैथिलीकल्याण नाटक | ... | .. | ... | १) |
| ६ आराधनासार सटीक | ... | ... | ... | १॥॥ |
| ७ जिनदत्तचरित | ... | ... | ... | १॥॥ |
| ८ प्रद्युम्नचरित | .. | ... | ... | ११) |
| ९ चारित्रसार | ... | ... | ... | १ॐ) |
| १० प्रमाणनिर्णय | ... | ... | ... | १-) |
| ११ आचारसार | ... | . | ... | १ॐ) |
| १२ त्रैलोक्यसार सटीक | ... | ... | ... | १॥॥) |
| १३ तत्त्वानुशासनादिसंग्रह (तत्त्वानुशासन, इष्टोपदेश सटीक, नीतिसार, श्रुतावतार, श्रुतस्फुट, वैराग्य- माणिमाला, ढाढसीगाथा, तत्त्वसार, ज्ञानसार, मोक्षपंचाशिका, अध्यात्मतरंगिणी, पात्रकेसरी- स्तोत्र, अध्यात्माष्टक, द्वात्रिंशतिका) | .. | ... | ... | १॥ॐ) |
| १४ अनगारधर्माभृत सटीक | ... | ... | ... | ३११) |
| १५ युक्त्यानुशासन सटीक | ... | ... | ... | १११-) |
| १६ नयचक्रसंग्रह (आलापपद्धति, नयचक्र द्रव्य— स्वभावप्रकाशक नयचक्र) | ... | ... | ... | १११ॐ) |
| १७ पट्टप्राभृतादि संग्रह | ... | ... | ... | ३) |
| १८ प्रार्थश्चित्त-संग्रह | ... | ... | ... | |

ग्रन्थ-सूची ।

| | | | | | पृष्ठान्ते |
|---------------------|-----|-----|-----|-----|------------|
| उद्दिष्टिण्डं | ... | ... | ... | ... | १—७५ |
| उद्दिष्टिण्डं | ... | ... | ... | ... | ७६—१०३ |
| प्रायश्चित्त-तुलिका | ... | ... | ... | ... | १०४—१६४ |
| प्रायश्चित्त-ग्रन्थ | ... | ... | ... | ... | १६५—१७२ |

माणिकचन्द्र द्वि० जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची ।

| | | | |
|--|-----|-----|-----|
| १ लघोऽग्न्यादिसंग्रह (लघोऽग्नयतात्पर्यवृत्ति, लघुसर्वज्ञसिद्धि, बृहत्सर्वज्ञसिद्धि) | ... | ... | (६) |
| २ सागारधर्मानृत सटीक | ... | ... | (६) |
| ३ विक्रान्तकौरवीय नाटक | ... | ... | (६) |
| ४ पार्श्वनाथचरित्र | ... | ... | (६) |
| ५ नैधिलीकल्याण नाटक | ... | ... | (६) |
| ६ आराधनासार सटीक | ... | ... | (६) |
| ७ जिनदत्तचरित | ... | ... | (६) |
| ८ प्रद्युम्नचरित | ... | ... | (६) |
| ९ चारित्रसार | ... | ... | (६) |
| १० प्रमाणनिर्णय | ... | ... | (६) |
| ११ आचारसार | ... | ... | (६) |
| १२ त्रैलोक्यसार सटीक | ... | ... | (६) |
| १३ तत्त्वानुशासनादिसंग्रह (तत्त्वानुशासन, इष्टोपदेश सटीक, नीतिसार, श्रुतावतार, श्रुतस्कन्ध, वैराग्य- माणिमाला, डाटसीगाथा, तत्त्वसार, ज्ञानसार, मोक्षपंचाशिखा, अध्यात्मतरंगिणी, पात्रकेसरी- स्तोत्र, अध्यात्माष्टक, द्वात्रिंशतिष्ठा) | ... | ... | (६) |
| १४ अनगारधर्मानृत सटीक | ... | ... | (६) |
| १५ युक्त्यानुशासन सटीक | ... | ... | (६) |
| १६ नयचक्रसंग्रह (आलापपद्धति, नयचक्र द्वय— स्वभावप्रकाशक नयचक्र) | ... | ... | (६) |
| १७ पट्ट्यानुतादि संग्रह | ... | ... | (६) |
| १८ प्रायश्चित्त-संग्रह | ... | ... | (६) |

आद्यग्रन्थत्रयाणां प्रकरणसूची ।

| प्रकरणं | | | | पृष्ठ-संख्याः—क्रमेण । | | |
|----------------------------------|-----|-----|-----|------------------------|------------|-----|
| सूत्रगुणाधिकारः | ... | ... | ... | १ | ७६ | १०४ |
| त्रयमनहात्रताधिकारः | ... | ... | ... | ३ | ७७ | १०४ |
| द्वितीयाद्यनहात्रताधिकारः | ... | ... | ... | ९ | ८१-१११-११२ | |
| चतुर्थमहात्रताधिकारः | ... | ... | ... | १० | ८२ | ११४ |
| पंचममहात्रताधिकारः... | ... | ... | ... | १३ | ८४ | ११८ |
| पशुत्रताधिकारः | .. | ... | ... | १५ | ८४ | ११८ |
| ईर्यासमित्तिप्रकरणं | ... | ... | ... | १६ | ८५ | ११८ |
| भाषासमित्तिप्रकरणं | ... | ... | ... | १८ | ८६ | १२२ |
| एषणसमित्तिप्रकरणं | ... | ... | ... | १९ | ८७ | १२५ |
| सादान्निषेधणसमित्तिः | ... | . | ... | २१ | ८९ | १२८ |
| प्रतिश्रुणसमित्ति | ... | ... | ... | २२ | ८९ | १२८ |
| इन्द्रियरोधाधिकारः | ... | ... | ... | २२ | ९० | १२९ |
| लोकधिकारः | . | ... | ... | २३ | ९१ | १३१ |
| पठवशकधिकारः | ... | ... | ... | २४ | ९० | १३९ |
| सर्वेतराधिकारः | ... | ... | .. | २७ | ९१ | १३१ |
| सूत्रान-अदन्तान-भित्ति-यनाधिकारः | ... | ... | ... | २७ | ९२ | १३१ |
| स्तिमित्तिजनकनकाधिकारः | ... | ... | ... | २७ | ९२ | १३२ |
| उत्तरगुणाधिकारः | ... | ... | ... | २८ | ९३ | १३३ |
| कूलिक-प्रकरणं | ... | ... | ... | ३३ | ९४ | १३३ |
| दशविधप्रश्न-विज्ञानाधिकारः | ... | ... | ... | ३७ | ० | • |
| कालो-वन | ... | ... | ... | ३७ | ० | • |
| प्रतिक्रमणं | ... | ... | ... | ३९ | ० | • |
| उत्तरं | ... | ... | ... | ४० | ० | • |
| विवेक | ... | ... | ... | ४० | • | • |

आद्यग्रन्थत्रयाणां प्रकरणसूची ।

| प्रकरणं | पृष्ठ-संख्या—क्रमेण । | | |
|-----------------------------------|-----------------------|------------|-----|
| सूक्तगुणाधिकारः | १ | ७६ | १०४ |
| त्रयमनहात्रताधिकारः | ३ | ७७ | १०४ |
| द्वितीयतृतीयमहात्रताधिकारः | ९ | ८१-१११-११२ | |
| चतुर्थमहात्रताधिकारः | १० | ८२ | ११४ |
| पंचममहात्रताधिकारः... .. | १३ | ८४ | ११८ |
| षष्ठमहात्रताधिकारः | १५ | ८४ | ११८ |
| ईर्यामितिप्रकरणं | १६ | ८५ | ११८ |
| भाषासामितिप्रकरणं | १८ | ८६ | १२२ |
| एष्यनामितिप्रकरणं | १९ | ८७ | १२५ |
| स्तादान्निधेयसामितिः | २१ | ८९ | १२८ |
| प्रतिष्ठपनासामिति | २२ | ८९ | १२८ |
| इन्द्रियरोधाधिकारः | २० | ९० | १२९ |
| लेशाधिकारः | २३ | ९१ | १३१ |
| पठवस्तुकाधिकारः | २४ | ९० | १२९ |
| लक्ष्मणाधिकारः | २७ | ९१ | १३१ |
| सूक्तान्निधेयसामितिः | २७ | ९२ | १३१ |
| स्तिम्भेजनेकभक्त्याधिकारः | २७ | ९० | १३२ |
| उत्तररुणाधिकारः | २८ | ९३ | १३३ |
| सूक्तिका प्रकरणं | ३३ | ९४ | १३३ |
| दशविषयप्रश्नविनाधिकारः | ३७ | ० | • |
| त्याजेवना | ३७ | ० | • |
| प्रतिक्रमणं | ३९ | ० | • |
| सम्प्रदं | ४० | ० | • |
| विशेषः | ४० | • | • |

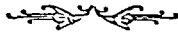
| | | | | | |
|----------------|-----|----|----|----|-----|
| शुद्धता .. | ... | . | ११ | . | . |
| वर्गीकरण .. | . | . | ११ | ११ | . |
| पत्रक .. | ... | . | ४० | . | . |
| कार्य-विशेष .. | ... | . | ११ | . | ० |
| परिभाषा .. | . | . | ४० | ० | . |
| संशोधन .. | .. | .. | ११ | ० | . |
| संशोधन .. | ... | . | ११ | ० | . |
| परिभाषा .. | ... | . | ११ | . | . |
| परिभाषा .. | ... | . | ११ | . | . |
| परिभाषा .. | ... | . | ११ | . | . |
| परिभाषा .. | ... | . | ११ | . | . |
| परिभाषा .. | ... | . | ११ | . | . |
| परिभाषा .. | .. | .. | ११ | ४० | १४० |
| परिभाषा .. | .. | .. | ११ | ४० | १४० |





नमो वीतरागाय ।

प्रायश्चित्तसंग्रहः ।



श्रीन्द्रनन्दियोगीन्द्र-विरचितं

छेदपिण्डम् ।



विच्छिन्नकर्मबंधे णिच्छयणयमस्तिऊण अरहंते ।
वोच्छामि छेदपिण्ड प्रायश्चित्तं पणमिऊणं ॥ १ ॥

विच्छिन्नकर्मबंधान् निश्चयनयमाश्रित्य अर्हते ।
वञ्चामि छेदपिण्डं प्रायश्चित्तं प्रणम्य ॥

रिसिसादयमूलत्तरगुणादिचारे प्रमाददृष्टोर्हि ।
जादे प्रायश्चित्तं णिसुणह कमसो जहाजोगं ॥ २ ॥

ऋषिश्रावकमूलेत्तरगुणातिचारे प्रमाददर्पान्याम् ।
जाते प्रायश्चित्तं निदृणुत क्रमशो यथायोन्यम् ॥

प्रायश्चित्तं छेदो मलहरणं पावणात्तणं सौही ।
पुण्ण पवित्तं पावणमिदि प्रायश्चित्तनाम इ ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्तं छेदो मलहरणं पापनाशनं शुद्धिः ।

पुण्यं पवित्रं पावनमिति प्रायश्चित्तनामानि ॥

मूलगुण संटाण गुरुमासं तद् य पंचकल्याणं ।

मासियमिदि पञ्जाया णायत्त्वा पंचकल्याणा ॥ ४ ॥

मूलगुण सस्थानं गुरुमास तथा च पंचकल्याण ।

मासिकमिति पर्याया ज्ञातव्या पंचकल्याणाः ॥

णिव्वियड्डी पुरिमंडलमायामं एयटाण खमणमिदि ।

कल्याणमेगमेदेहिं पंचहिं पंचकल्याणं ॥ ५ ॥

निर्विकृतिः पुरिमण्डल आचाम्ल एकस्थानं क्षमणमिति ।

कल्याणमेक एतैः पंचभिः पंचकल्याण ॥

उपवासपंचण वा आयं विलपचण व गुरुमासा दे ।

निव्वियडिपंचण वा अवणीदे हादि लहुमासं ॥ ६ ॥

उपवासपंचके वा आचाम्लपचके वा गुरुमासा. .. ॥

निर्विकृतिपंचके वा अपनीते भवति लघुमासः ॥

णाऊण पुरिससत्त चित्तं वयसथिराथिरत्तं च ।

एकम्मि य कल्याणे अवणीदे भिण्णमासा से ॥ ७ ॥

ज्ञात्वां पुरुषसत्त्व चित्तं व्रतस्थिरास्थिरत्वं च ।

एकम्मिन् च कल्याणे अपनीते भिन्नमासाः तस्य ॥

आयामं सतिभाग दो दो णिव्वियडि एयटाणाइं ।

पुरिमंडलेगभत्ता चउरो वारस विउस्सग्गे ॥ ८ ॥

आचाम्ल सत्रिभागं द्वे द्वे निर्विकृती एकस्थानानि ।

पुरिमण्डलैकभक्ताः चत्वारः द्वादश व्युत्सर्गाः ॥

अट्टस्यणमोक्कारा उववास्तो वा हवंति उववासे ।
छठे पुण ते तितुणा छठं वा एगकल्लणं ॥ ९ ॥

अष्टशतनमस्कारा उपवास्तो वा भवन्ति उपवासे ।
षष्ठे पुनस्ते त्रिगुणा. षष्ठं वा एककल्याण ॥

णवपंचणमोक्कारा काउस्तग्गम्मि होति एगम्मि ।
एदेहिं वारस्तेहिं उववास्तो जायदे एक्को ॥ १० ॥

नवपंचनमस्कारा कायोत्सर्गे भवन्ति एकम्मिन् ।
एतैर्द्वादशभि उपवास्तो जायते एक ॥

आयंघिलम्हि पाट्टूण खमणपुरिमंडले तथा पादो ।
एयहाणे अद्धं निव्वियडीओ य एमेव ॥ ११ ॥

आचान्हे पाट्टेनं क्षमणपुरिमण्डले तथा पादः ।
एकन्थाने अर्धे निर्विकृतौ च एवमेव ॥

मज्जारपदप्पमाणं पुटविं सलिलं च चुलुयपरिमाणं ।
दीवसिहामित्तर्गिं करपल्लवजणियय वाडं ॥ १२ ॥

मार्जारपदप्रमाणं पृथिवीं मल्लिं च चुलुकपरिमाणं ।
दीपशिखामात्राग्निं करपल्लवजनितं वायुम् ॥

सुद्धिपमाणं हरिदावयवं जो घायए प्रमादेण ।
पायच्छित्तं तरसं दु एक्केको तणुविउस्सग्गो ॥ १३ ॥

मुष्टिप्रमाणं हरितावयवं य घातयेत् प्रमादेन ।
प्रायश्चित्तं तस्य तु एकैकं तनुव्युत्तर्गं ॥

१ इदं वाच्यम् न स एल्लके नस्ति । छेदस्य मेऽर्धदनुत्तर्गत्वे ।

एहंदिद्यादिचउरिंदियंतजीवे जदा पमादेण ।

दप्पेणुवघादे जो को'वि मुणी थूलगुणधारी ॥ १४ ॥

एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रियान्तजीवान् यदा प्रमादेन ।

दर्पण उपघातयेत् यः कोऽपि मुनिः स्थूलगुणधारी ॥

काउस्सग्गुववासा दायव्वा तस्स पाणगणणाए ।

उत्तरगुणियस्स पुणो इंदियगणणाए दायव्वा ॥ १५ ॥

कायोत्सर्गोपवासा दातव्याः तस्मै प्राणगणनया ।

उत्तरगुणिने पुन इन्द्रियगणनया दातव्याः ॥

अहवा पयत्तअपयत्तचारिणो तह थिरस्स अथिरस्स ।

काओसग्गुववासा इंदियगणणाए पाणगणणाए ॥ १६ ॥

अथवा प्रयत्तापयत्तचारिणो तथा स्थिरस्यास्थिरस्य ।

कायोत्सर्गोपवासा इन्द्रियगणनया प्राणगणनया ॥

चारसच्चदुतिण्हं इगिवितिचउरिंदियाण मोह्वणे ।

णियमजुद्धो उववासो तप्पडिच्चद्धो तवो अहवा ॥ १७ ॥

द्वादशपट्चतुस्त्रायाणा एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणा मर्दने ।

नियमयुत उपवासः तत्प्रतिचद्धं तपोऽथवा ॥

तिष्ठणवचारसगुणिदाणेयाण घायणे सनियमाइं ।

इगिवितिचदुच्छट्ठाइं तप्पडिच्चद्धो तवो अहवा ॥ १८ ॥

त्रिपट्चद्वद्वादशगुणितानामेकेन्द्रियादीना घातने सनियमानि

एकद्वित्रिचतुःपञ्चानि तत्प्रतिचद्ध तपोऽथवा ॥

पण्णारस्तगुणिद्राणं पुण एयाणं घायणे हवे छेदो ।

सप्पाडिक्कमणं कट्ठाणपंचयं तत्तवो अहवा ॥ १९ ॥

पंचदशगुणितानां पुन. एकेन्द्रियादीनां घातने भवेच्छेदः ।

नप्रतिक्रमणं कल्याणपंचकं तत्तयोऽथवा ॥

एदं पायच्छित्तं अयत्तचारिस्स होइ दायव्वं ।

जत्तेण चरंतस्स खु एदस्सद्धं भणंति परे ॥ २० ॥

एतत्प्रायश्चित्तं अयत्नचारिणं. भवति द्रातन्यं ।

यत्नेन चरत. खलु एतन्य अर्थं भणन्ति परे ॥

मूलत्तरगुणधारी पमादेत्तहिदो पमादरहिदो च ।

एक्केको वि थिराथिरभेद्रेण होइ इवियप्पो ॥ २१ ॥

मूलत्तरगुणधारी प्रमादमाहित प्रमादरहितश्च ।

एकैकोऽपि स्थिरास्थिरभेदेन भवति द्विविक्ल्पः ॥

तेसिं अत्ताण्णिघादे उवदात्ता तिण्णि छट्ठमथ छट्ठं ।

मात्तिय पण्णं ति च तियखमणं छट्ठं लघुमात्तमिगिवारे ॥ २२ ॥

तेषां अमंजिवाते उपवामा त्रय षष्ठं अय षष्ठं ।

नामिकं पंचकं इति = त्रिक्लमणं षष्ठं लघुनाम एकवारे ॥

छट्ठ लघुमात्त मात्तिय मूलद्राणोववात्ततिग छट्ठं ।

तह भिण्णमात्त मात्तियमिदि कमसो होइ बहुवारे ॥ २३ ॥

षष्ठं लघुमात्तः नामिकं मूलस्थानं उपवामत्रिकं षष्ठं ।

तथा भिन्नमात्तः मात्तिकमिति क्रमशो भवति बहुवारे ॥

सतरमेदं देयं सण्णिवधे पुण णिरंतरं देयं ।
चडुवारोहि य परदो सच्चत्य धि होदि मूलखिदी ॥ २४ ॥

सान्तरमेतद् देय सण्णिवधे पुनः निरन्तर देयं ।
चतुर्वारेभ्यः च परतः सर्वत्रापि भवति मूलक्षितिः ॥

वाल्लिच्छीगोघादे णियदंसणभयवसा समावण्णे ।
तिण्णिण य मासा छट्ठ तस्स य अद्धं तदद्धं च ॥ २५ ॥

वाल्लिच्छीगोघाते निजदर्शनभयवशात्समापन्ने ।
त्रयश्च मासा षष्ठ तस्य च अर्धं तदर्धं च ॥

विरदो व सावओ वा तिविहो जदि संजदस्स उवरिं दु ।
उवयरणादिनिमित्तं अप्पणं घादण को वि ॥ २६ ॥

विरतो वा श्रावको वा त्रिविध यदि संयतस्योपरि तु ।
उपकरणादिनिमित्त आत्मान घातयेत् कोऽपि ॥

ताण वधे संजादे वारसमासा तहेव छम्मासा ।
तिण्णिण य मासा छट्ठं दिवड्ढमासो य दायव्वं ॥ २७ ॥

तेषा वधे सजाते द्वादशमासा तथैव षण्मासाः ।
त्रयश्च मासा षष्ठ द्व्यर्धमासश्च दातव्यः ॥

सेवडयभगववंदगकावालियभोयपमुहपासंडा ।
जदि सजदस्स कस्स वि उवरि विवादादिहेट्ठहिं ॥ २८ ॥

श्वेतपटकभगववन्दककापालिकभोजप्रमुखपाण्डा ।
यदि संयतस्य कस्यापि उपरि विवादादिहेतुभिः ॥

अप्पाणं विणिवायंति तस्स छहं तु होइ छम्मासं ।
तद्धिक्खियाण तव्वमत्ताण वहे पुणु तदद्धं ॥ १९ ॥

आत्मान विनिपातयन्ति तस्य षष्ठ तु भवति षण्मासं ।
तदीक्षितानां तद्भक्तानां वधे पुन तदर्धार्ध ॥

ब्रंभणघादे अह य मासा एयंतरेण उववासा ।
खत्तियवदस्ससुद्धाण घायणांओ उण तदद्धं ॥ २० ॥

ब्रान्हणवाते अष्टौ च मासा एकान्तरेण उपवासा ।
क्षत्रियवैश्यशूद्राणा घातनत. पुन. तदर्धार्ध ॥

अह य छच्चइ दोण्णि य मासा एयंतरेत्ति विंति परे ।
दोसु वि उवपसेसु छहं ओट्टिए अंते ॥ २१ ॥

अष्टौ च षट् चत्वारः द्वौ च मासा एकान्तरे इति क्षुवन्ति परे ।
द्वयोरपि उपदेशयोः षष्ठ आदिके अन्ते ॥

णियसमयजादिकुलधम्मसुक्कस्तायरणधारयाण वहे ।
एसा सुद्धी मज्झिमजहण्णघादे तदद्धं ॥ २२ ॥

निजसमयजातिकुलधर्मे उत्कृष्टाचरणधारकाणां वधे ।
एषा शुद्धि मध्यमजन्यवाते तदर्धार्ध ॥

मेसासमहिस्सखरकरहाजादीगांमच्चउत्पयवहम्मि ।
अंतादिछहसहिया मासद्धेयंतरुववासा ॥ २३ ॥

मेषाश्वमहिषखरकरभाऽजादिग्रामचतुष्पदवधे ।
अन्तादिषष्ठसहिता मासार्धा एकान्तरेणोपवासा ॥

१ तदद्ध क । २ घायणे ख. । ३ तदद्ध क । ४ वादीय अन्ते च ख. ।
५ मेषादिग्रामवास्तिना चतुष्पदाना वधे ।

तथाचार्योभासात्तुमात्रमात्राद्यप्येवमप्युच्यते ।
अत्रैव तस्य चामरं चामरात् इति पाठः इति भाष्यम् ॥ ३४ ॥

एतन्मात्रायास्तु मात्रायास्तुमात्रं ॥ ३५ ॥
तुमात्रं चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ३६ ॥

पालार्थिभ्याश्चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ३७ ॥
चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ३८ ॥

भाष्येति चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ३९ ॥
चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ४० ॥

अप्ये भवति चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ४१ ॥
चुत्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ४२ ॥

अप्ये भवति चामरात्तुमात्रं चामरात्तुमात्रं ॥ ४३ ॥
उक्तं प्रमादजातस्य भवति एतस्य चामरात्तुमात्रं ॥ ४४ ॥

अहं य सत्त य छच्छदु उववासा हांति अश्मदिह्याण ।
चउरिंदियतेददियवेददियपददियाण वेद ॥ ३७ ॥

अथै च मस च पद् चत्वार उपवासा भवन्ति अतिमहता ।
चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियैकोन्द्रियाणा ववे ॥

कोमलहरियतिणंकुरपुजस्तुवरिं प्रमाददोसेण ।
पाए पदियम्मि हवे उववासा सत्पतिक्रमणो ॥ ३८ ॥

कोमलहरितृणाङ्कुरपुजस्योपरि प्रमाददोषेण ।
पादे पतिते भवेत् उपवासा सप्रतिक्रमणः ॥

एवं वित्तिचउरिंदियपुंजाणं उवरि पडियए पाए ।
सपडिक्कमण दोणिण य तिण्णिण य चत्तारि उववासा ॥ ३९ ॥

एव द्वित्रिचतुरिन्द्रियपुंजाना उपरि पतिते पादे ।
सप्रतिक्रमण द्वौ च त्रयश्च चत्वार उपवासा ॥

सप्पंडयाणमुवरिं पाए पडियम्मि अहव चंक्रमिए ।
कह्लाणियाणमुवरिं पडिकमणं पंच उववासा ॥ ४० ॥

सर्पतामुपरि पादे पतिते अथवा चक्रमिते ।
कल्याणिकानामुपरि प्रतिक्रमणं पंच उपवासा ॥

पढमवद-इति प्रथमव्रत ।

गाणिणा चत्तणिहेण व सेसेहिं असाण्णिण केण वि वा ।
अप्पम्मि मुस्तावादे अदिण्णगहेणे य अप्पम्मि ॥ ४१ ॥

गणिना त्यक्तनिवहेन वा स्नेहेन असात्रिहतेन केनापि वा ।
आत्मनि मृपावादे अदत्तग्रहणे च आत्मनि ॥

विण्णादे अणुकमसो छेदो आलोयणा विउस्सग्गो ।
सप्पडिक्कमणो एगो उववासो दोण्णिण उववासा ॥ ४२ ॥

विज्ञातेऽनुक्रमशः छेदः आलोचना व्युत्सर्गः ।
सप्रतिक्रमण एक उपवास द्वौ उपवासौ ॥

अप्फालिऊण हत्थं पुरदो समयस्स लोयपुरदो वा ।
जदि वददि मुस्तावादं तो सट्ठाणं च मूलखिंदी ॥ ४३ ॥

१ गहणम्मि अप्पम्मि । २ अस्या अत्रे इयमपि गाथा समुपलभ्यते स पुस्तक

दम्ममुवणादीयं गहिदं जदि मुणदि ससमओ ।

अहवा एय परियत्त लोगो सट्ठाणं च मूलखिंदी ॥ १ ॥

द्रममुवर्णादिक गृहीतं यदि जानाति स्वस्मय ।

अथवा इत परो लोक संस्थान च मूलक्षितिः ॥

आम्काल्य रम्नं पूरुः समयस्य लोकापुरतो ॥ १ ॥

यदि वदति मृग्यादां तत्र संस्थानं च मूर्च्छति ॥

अह्या समकालसमकालउभयति करणमोक्षभासिहस ।
काउस्सगो श्मिद्वृत्तिउभयासो सप्पट्टिकमणां ॥ ४३ ॥

अथवा ममत्ताममलोभयन्नि करणमृग्याभापिण ।

कायोत्सर्ग एकद्विच्युपवासाः सप्रतिक्रमणाः ॥

सुष्णं पचयते अण्णादे णादे अदत्तगलणम्मि ।
काउस्सगो श्मिद्वृत्तिउभयासो सप्पट्टिकमणां ॥ ४५ ॥

शून्ये प्रत्यक्षे अज्ञाते ज्ञाते अदत्तग्रहणे ।

कायोत्सर्ग एकद्विच्युपवासाः सप्रतिक्रमणा ॥

एदं पायच्छित्तं प्रमाददो एगवारदोसस्स ।

दप्पेण य बहुवार कयस्स पुण पचकल्याण ॥ ४६ ॥

एतत्प्रायश्चित्तं प्रमादतः एकवारदोपम्य ।

दपेण च बहुवारं कृतम्य पुन पचकल्याणं ॥

विदिय तदिय वद-इति द्वितीयं तृताय प्रत ।

अद्वंभभासिणित्थीआहिलासतदंगफासंणि च्छेदो ।

आलोयणा य काउस्सगो नियमोवशासो य ॥ ४७ ॥

अत्रह्यभापिणः स्वयभिलापतदङ्गस्पर्शने छेदः ।

आलोचना च कायोत्सर्गः नियमोपवासश्च ॥

१ सो. क. । २ ण. क । ३ फासणे ख. । ४ सप्रतिक्रमणोपवासश्च ।

छेदपिण्डम् ।

दृष्ट्वा चित्तिद्वयं य महिलं जत्त पमाद्वोत्तेण ।
 इन्द्रियखलणं जायदि तत्त तिरित्तं हवइ छेदो ॥ ४८ ॥
 दृष्ट्वा चित्तयिन्वा च महिलं यस्य प्रमाद्वोत्तेण ।
 इन्द्रियखलणं जायते तस्य तिरात्रं भवति छेदः ॥
 अंताहटो जोहिं अपुसंतो जदि पियत्त दिविरत्तो ।
 तपडिक्कनपुववात्तो दायव्वो तत्तित्तमो छेदो ॥ ४९ ॥
 अंताहटो योहिं अमृदयत् यदि निवृत्तदिविरत्तः ।
 मत्तित्तममभुव्वामो दातव्यं तन्ययं छेदः ॥
 जो अच्चंमं सेवदि विरदो ततो तइं अविज्जादं ।
 तपडिक्कनमं कल्लाणपंचयं तत्त दायव्वं ॥ ५० ॥
 य अच्चं मेवो विरत्तं मत्तं मत्तं अविज्जातं ।
 मत्तित्तमम कल्लाणपंचयं तन्यं दातव्यं ॥
 बहुत्तो वि नेहुणं जो सेवदि अणोहिं अहुणिदं तत्त ।
 एयंतरोदवात्ता चउत्तात्ता अहव उन्नात्ता ॥ ५१ ॥
 बहुत्तो वि नेहुणं य. मेवो अन्यै. अजात्त तन्य ।
 एयंतरोदवात्ता चउत्तात्ता अहव उन्नात्ता ॥
 जो सेवदि अच्चंमं परोहिं विज्जादंमेकवारम्मि ।
 पायच्छित्तं तत्त इ दायव्वं मूलमूमिति ॥ ५२ ॥
 यः मेवो अच्चं परो. विज्जातं एकवरे ।
 प्रयच्छित्तं तन्यं तु दातव्यं मूलमूमिति ॥

जो देवमणुयतिरियउवसग्गजादं सुभुंजदि अवंभं ।
सपडिक्कमणं कल्लाणपंचयं होदि देयं से ॥ ५३ ॥

यः देवमनुष्यतिर्यगुपसर्गजातं सुभजते अव्रम्ह ।
सप्रतिक्रमण कल्याणपंचकं भवति देयं तस्य ॥

एक्केक्कदिणुग्घांडं कल्लाणं कुणदि देवअवंभे ।
तिरिए दोदोदिवसुग्घांडं मणुए अणुग्घांडं ॥ ५४ ॥

एकैकदिनोद्धाट कल्याणं करोति देवे अव्रम्हणि ।
तिरश्चि द्विद्विदिवसोद्धाट मनुजे अनुद्धाट ॥

जो णियमवंदणाणं मज्झे एक्कं च दो च किरियाओ ।
सज्झायजुदा तिण्णि व काऊण परिस्समादीहिं ॥ ५५ ॥

यः नियमवन्दनयोर्मध्ये एका च द्वे च क्रिये ।
स्वाध्याययुतास्तिस्रो वा कृत्वा परिश्रमादिभिः ॥

सुत्तो पदोपसमए रेदं पस्सदि खु तस्सिमो च्छेदो ।
सपडिक्कमणं खमणं णियमं खमणं च णियमो य ॥ ५६ ॥

सुतः प्रदोपसमये रेतः पश्यति खलु तस्याय छेदः ।
सप्रतिक्रमण क्षमण नियम. क्षमण च नियमश्च ॥

रयणिविरामे सज्झायणियमवंदणाण मज्झाहिं ।
एक्कं च दो व तिण्णि य किरियाउ सम णिउ य पसुत्तो ॥ ५७ ॥

रजनिविरामे स्वाध्यायनियमवन्दनाना मध्ये ।
एका च द्वे वा तिस्रश्च क्रिया समाप्य च प्रमुतः ॥

दे. स. पुस्तके । २ सान्तर । ३ निरन्तरम् । ४ सज्झायणियमजिणवंदणाण
के पट ।

रेदं पस्सदि जदि तो दायव्वं तस्स साणियमं खवणं ।

सपडिक्कमणं खमणं सपडिक्कमणं तहा छट्ठं ॥ ५८ ॥

रेत. पश्यति यदि ततः दातव्यं तस्य सनियमं क्षमणं ।

सप्रतिक्रमणं क्षमणं सप्रतिक्रमणं तथा षष्ठं ॥

सपडिक्कमणुववासुद्विवसे खवणाइं वेणि वेंति परे ।

रयणीए पुव्वपच्छिमजामे णियमे वजुत्ताइं ॥ ५९ ॥

सप्रतिक्रमणोपवासः दिवसे क्षमणे द्वे ब्रुवन्ति परे ।

रजन्या पूर्वपश्चिमयामे नियमोपयुक्ते ॥

अवसेसणिस्तासमए सुज्झादि नियमेण दिट्ठए रेदे ।

दिवसम्मि सुत्तओ जदि पस्सदि तो छट्ठ पडिक्कमण ॥ ६० ॥

अवशेषनिशासमये शुद्धयति नियमेन दृष्टे रेतसि ।

दिवसे मुत यदि पश्यति तत. षष्ठं प्रतिक्रमणं ॥

चल्यं वद-इति चतुर्थं ग्रं ।

ऐगवराडयकागिणिपणचेलाइं पमाददोसेण ।

अप्यं परिग्रहं जो गेणहदि निगंथवदधारी ॥ ६१ ॥

एकवराटककाकिणीपणत्रेलानि प्रमाददोषेण ।

अल्पं परिग्रहं य. गृह्णाति निर्ग्रन्थव्रतधारी ॥

आलोचना य काउस्सगो खमणं च णियमसंजुत्तं ।

सपडिक्कमणुववासो कमसो छेओ इमो तस्स ॥ ६२ ॥

आलोचना च कायेत्सर्ग क्षमणं च नियमसयुक्त ।
सप्रतिक्रमणोपवासः क्रमशः छेदोऽय तस्य ॥

अच्छादनं महर्घं जो गेणहृदि संजदो सरागमणो ।
तस्स दु पायच्छित्तं वे उववासा पडिक्रमणं ॥ ६३ ॥

आच्छादनं महार्घं य. गृह्णाति संयत. सरागमनाः ।
तस्य तु प्रायश्चित्तं द्वौ उपवासौ प्रतिक्रमण ॥

पोथियलिहावणत्थं जइ देइ धणं सहस्सगणणाए ।
कोइ वि कस्स वि तो पोथिय लिहाविऊण सो पच्छा ॥६४॥

पुस्तकलेखनार्थं यदि ददाति धनं सहस्रगणनायां ।
कोऽपि कस्यापि तत पुस्तकं लेखयित्वा स पश्चात् ॥

कुणउ मुणी कललाणाइं पंच पडिक्रमणसुणणपुव्वाइं ।
ऊणम्मि व णाऊणा सोही बहुगम्मि मूलखिदी ॥६५॥

करोतु मुनि. कल्याणानि पंच प्रतिक्रमण.....पूर्वाणि ।
ऊने च ज्ञात्वा शुद्धिः बहुके मूलक्षिति ॥

जो अण्णेसिं दव्वं ठवेइ ठविऊण कुणइ अइलोहं ।
सठवणाण य काले दीणत्तं दावए नियमं ॥ ६६ ॥

य. अन्येषां द्रव्यं स्थापयति स्थापयित्वा करोति अतिलोभं ।
स्थापनानां च काले दीनत्वं दापयेत् नियमं ॥

बिक्खाददाणमहणं करेदि गिण्हदि परिग्गह सइरं ।
तस्स य पायच्छित्तं दायव्वमणुक्कमेणेदं ॥ ६७ ॥

घणेऊणा. स पुस्तके पाठ । २ तद्व्रगणयणकाले. स पाठ तस्थ-
। ३ गिण्हदि स. ।

विख्यातदानग्रहण करोति गृह्णाति परिग्रहं स्वैर ।

तस्य च प्रायश्चित्तं दातव्यमनुक्रमेणेदम् ॥

एगुववास्तो छट्ठं अष्टमयं मासियं च एयाइं ।

पडिकमणमपुव्वाइं चरिमे पुण मूलभूमिति ॥ ६८ ॥

एकोपवाम. षष्ठं अष्टमकं मासिकं च एतानि ।

प्रतिक्रमणपूर्वाणि चरमे पुन मूलभूमिरिति ॥

पंचनं वदं-इति पंचन व्रतम् ।

चउविहमेयविहं वा आहारं संजदो जदि णिस्ताए ।

उववास्तपरिस्संतो वाहिगिलाणो वभुंजिज्ज ॥ ६९ ॥

चतुर्विधमेकविधं वा आहारं संयतो यदि निशि ।

उपवामपरिश्रमत न्याविन्दानो वेभुज्यते ॥

तो पडिकमणपुरोगं छट्ठं खमणं च तत्त दायव्वं ।

उवसग्गेणं सव्वं रत्ति भुजंतत्त संठाणं ॥ ७० ॥

तत प्रतिक्रमणपुरोगं षष्ठं क्षमणं च तन्य दातव्य ।

उपसग्गेणं नवे रात्रौ भुजानत्य संस्थानम् ॥

संतो रोयक्कंतो सहोवसग्गो डिओ णिसण्णो वा ।

णिस्सि भोयणम्मि पावइ मासियमेवेत्ति वेत्ति परे ॥ ७१ ॥

सन् रोगाक्रान्त. सोपमर्ग स्थित निषण्णो वा ।

निशि भोजने प्राप्नोति मामिकमेवेत्ति व्रुवन्ति परे ॥

जो रत्तीए चरियं पविसिय धम्मत्त कुणइ उड्डाहं ।

दायव्वं से मूलठाणमसंभोगिगो सो य ॥ ७२ ॥

यः रात्रौ चर्यां प्रविश्य धर्मस्य करोति उदाहं ।

दातव्यं तस्य मूलस्थानमसंभोगिकः स च ॥

सूराम्नि उगमंते अहव्य छण्णाम्नि लोहिदे सेदे ।

रविद्विवे भुंजंतस्स होदि लहुमास पणयदुगं ॥ ७३ ॥

सूर्ये उद्गमे अथवा छत्रे लोहिते श्वेते ।

रवित्रिम्बे भुंजानस्य भवति लघुमासः पंचकद्विकम् ॥

नालीतिगरस्स मज्झे जदि भुंजदि संजदो अणाचिण्णं ।

पुव्वह्णे अवरह्णे व तस्स पणगं हवे छेदो ॥ ७४ ॥

नालीत्रिकस्य मध्ये यदि भुनक्ति संयत अनात्रीर्ण ।

पूर्वाह्णे अपराह्णे वा तस्य पचकं भवेत् छेदः ॥

रादो दिया व सुविणंतराम्नि महुमज्जमंससेविस्स ।

णियमुववासो णियमो केवलो सिविणभोजिस्स ॥ ७५ ॥

रात्रौ दिवि वा स्वप्नान्तरे मधुमद्यमांससेविन ।

नियमोपवासौ नियम केवल स्वप्नभोजिनः ॥

छटं वद-इति षष्ठं व्रतम् ।

सुद्धेण असुद्धेण य उप्पंथेणं गयस्स वायामे ।

काउस्सगगो खमणं दायव्वमपुण्णकोसम्मि ॥ ७६ ॥

शुद्धेनाशुद्धेन च उत्पथेन गतस्य व्यायामेन ।

कायोत्सर्गं क्षमणं दातव्यं अपूर्णकोशे ॥

हेमसमये गिंभे दिवसणिस्ता पासुगिदरपंथेण ।

गतिगतिगल्लच्चउचउचउचउचउचउचउचउचउचउचकोसे ॥ ७७ ॥

घनहिमसमये ग्रीष्मे दिवसनिशयो प्रासुक्तेतरपयेन ।

त्रिकत्रिकत्रिकत्रिकपट्चतुःचतुःचतुःचतुःनवषट्नवषट्कोशे ॥

खमणं छट्टम दत्तम खवणं खमणं च छट्ट अष्टमयं ।

खमणं खमणं खमणं छट्टं च गदेस्तिमो छेदो ॥ ७८ ॥

क्षमणं षष्ठं अष्टमं दशमं क्षमणं क्षमणं च षष्ठं अष्टमकं ।

क्षमणं क्षमणं क्षमणं षष्ठं च गतेऽन्यायं छेदः ॥

वैति परे तिट्ठतिट्ठच्चउच्चउणवच्चक्कणवच्चक्ककोसाणं ।

इगिइगितिचट्टरिगिगिट्टिणिगिइगिगिट्टोणि खमणाणि ॥७९॥

ब्रुवन्ति परे त्रिद्वित्रिद्विषट्चतु पट्चतु नवषट् नवषट्कोशानां ।

एकैकत्रिचतुरैकैकद्विन्यैकैकद्विकानि क्षमणानि ॥

पिच्छं मोत्तूण मुणी गच्छदि जदि सत्तंपंडुपरिमाणं ।

सुज्झदि काओत्तग्गेण गाउग्गे एयखमणेण ॥ ८० ॥

पिच्छं मुक्त्वा मुनि गच्छति यदि सप्तपादपरिमाणं ।

शुद्धयति कायोत्तग्गेण गन्धुतिगते एकक्षमणेन ॥

डोलियगमणम्मि पुणो पुब्बुत्ततिकालपथमलहरणं ।

वहमाणपुरिसत्तंखागुणिदं देयं गिलाणस्स ॥ ८१ ॥

दोलिकगमने पुनः पूर्वोक्तत्रिकालपथमलहरणं ।

वहमानपुरपत्तंस्यागुणितं देयं न्यानम्य ॥

जाणुपमाणम्मि जले अजंतुवहुलम्मि तोलसधणुत्ति ।

इरियंतस्स विसोही मुणिणो एगो विउस्सरगो ॥ ८२ ॥

१ सत्तपदपरिमाणं ख । २ जे डोलियगमणम्मि ख । ३ जे अजंतुवहुलम्मि ख ।

जानुप्रमाणे जलेऽजन्तुबहुले षोडशधनूपीति ।
 ईराणस्य विशुद्धिः मुनेः एको व्युत्सर्गः ॥
 जण्ह उवरिं चउचउरंगुलेसु एगादिद्विगुणद्गुणाइं ।
 खमणाइं जंतुपउरे पुण अच्चहियाइं देयाइं ॥ ८३ ॥
 जानूपरि चतुश्चतुरङ्गुलेपु एकादिद्विगुणाद्विगुणानि ।
 क्षमणानि जन्तुप्रचुरे पुनः अम्यधिकानि देयानि ॥
 काउस्सगो आलोयणा य णावादिणा णदीतरणे ।
 णावाए जलहितरणे सोही खवणादिपणयंता ॥ ८४ ॥
 कायोत्सर्ग आलोचना च नावादिना नदीतरणे ।
 नावा जलधितरणे शुद्धिः क्षमणादिपंचकान्ता ॥
 सपरणिमित्तपउंजिददोणीणावादिणा णदीतरणे ।
 अण्णे भणंति एगो उववासो तह विउस्सगो ॥ ८५ ॥
 स्वपरनिमित्तप्रयुक्तदोणीनावादिना नदीतरणे ।
 अन्ये भणन्ति एक उपवासस्तथा व्युत्सर्गः ॥
 बुहुंतएसु णावादिगेसु बाहाहिं जो तरेऊण ।
 णीसरदि तरस छेदो खमणादिपणगपरियंतो ॥ ८६ ॥
 बुडत्सु नावादिकेषु बाहुम्यां यः तीर्त्वा ।
 निःसरति तस्य च्छेद क्षमणादिपंचकपर्यन्तः ॥
 इरियासमिदि-इतीर्यासमितिः ।

दोण्हं भासंताणं भासंतस्संतरे विउस्सगो ।
 आलोयणा इ छक्कम्मदेसणे खमणमेगं तु ॥ ८७ ॥

द्वयोः भाषमाणयोः भाषमाणस्यान्तरे व्युत्सर्गः ।

आलोचना तु षट्कर्मदेशने क्षमणमेकं तु ॥

उल्लुतिद्वहणं घरसारवणं घरकुडिलिपणं चैव ।

अंगणत्रोहारणपाणिआहणणं छेणत्रालणमिदि छकम्मं ॥ ८८ ॥

उत्तलीकण्डनं गृहसम्भार्जनं गृहकुडिलिपनं चैव ।

अंगणत्रोहारणं पानीयाननं कारीपज्वालनमिति षट्कर्म ॥

अविरदसुत्तपत्रोधिस्स गीदणट्टादिकरणभासिस्स ।

पुत्तुच्छिण्णपराधपभासिस्स य अट्टमं देयं ॥ ८९ ॥

अविरतसुत्तपत्रोधिनः गीतनृत्यादिकरणभाषिणः ।

पूर्वच्छिन्नापराधभाषिणश्च अष्टमं देयं ॥

चाउव्वण्णपराधं जो भासदि सो अवंदणिज्जो खु ।

गाणं गणिके कीरदि छेदो पणगादिमासिगंतो से ॥ ९० ॥

चातुर्वर्ण्यापराध यः भाषते सोऽवन्दनीयः खलु ।

गान गणिक कीर्तयति छेदः पंचकादिमासिकान्तस्तस्य ॥

भासासनिदि-इति भाषासमिति ।

अण्णाणवाहिदप्पेहिं हरिदकंदादिगेषु खद्धेषु ।

सालोयण विउसग्गो खमणं पणगं च इगिवारे ॥ ९१ ॥

अज्ञानन्याधिदुर्षे हरितकन्दादिकेषु खादितेषु ।

सालोचनो व्युत्सर्गः क्षमणं पंचकं च एकवारे ।

जानुप्रमाणे जलेऽजन्तुवहुले षोडशधनूपीति ।
 ईराणस्य विशुद्धिः मुनेः एको व्युत्सर्गः ॥
 जण्ह उवारिं चउचउरंगुलेसु एगादिद्विगुणद्विगुणाहं ।
 खमणाहं जंतुपउरे पुण अब्भहियाहं देयाहं ॥ ८३ ॥
 जानूपरि चतुश्चतुरङ्गुलेषु एकादिद्विगुणद्विगुणानि ।
 क्षमणानि जन्तुप्रचुरे पुनः अभ्यधिकानि देयानि ॥
 काउस्सगो आलोयणा य णावादिणा णदीतरणे ।
 णावाए जलहितरणे सोही खवणादिपणयंता ॥ ८४ ॥
 कायोत्सर्गः आलोचना च नावादिना नदीतरणे ।
 नावा जलधितरणे शुद्धिः क्षमणादिपंचकान्ता ॥
 सपरणिमित्तपउज्जिददोणीणावादिणा णदीतरणे ।
 अण्णे भणंति एगो उववासो तह विउस्सगो ॥ ८५ ॥
 स्वपरनिमित्तप्रयुक्तद्रोणीनावादिना नदीतरणे ।
 अन्ये भणन्ति एक उपवासस्तथा व्युत्सर्गः ॥
 बुद्धुतएसु णावादिगेषु बाहाहिं जो तरेऊण ।
 णीसरदि तस्स छेदो खमणादिपणगपरियंतो ॥ ८६ ॥
 बुद्धत्सु नावादिकेषु बाहुम्या यः तीर्त्वा ।
 निःसरति तस्य च्छेदः क्षमणादिपचकपर्यन्तः ॥
 दरियासमिदि-द्वीर्यासमितः ।

द्वाण्हं भासंताणं भासंतस्सतरं विउस्सगो ।
 आलोयणा इ छक्कम्मदेसणे खमणमंगं तु ॥ ८७ ॥

द्वयो भाषमाणयोः भाषमाण्यान्तरे न्युन्मर्गः ।

आद्येचना नृ पटुमैदगेने क्षमणमेकं तु ॥

दंलुतिदुहणं घरस्वारवणं घरकुट्टिद्विपणं चंद्र ।

अंगणबोहारणपाणिआरणणं उणवात्तणमिदि दृकस्मं ॥ ८८ ॥

उम्भयज्जटनं गृहमम्मानेन गृहकुट्टिद्विपणं चंद्र ।

अगणबोत्तणं पानीयानन करीणवात्तणमिदि पटुमं ॥

अदिरदसुत्तपधोधिग्गर्गरीदणट्टादिकरणभास्मिग्गर्ग ।

पुट्टुत्तिउण्णपराधपभास्मिग्गर्ग य अट्टुमं दंयं ॥ ८९ ॥

अग्निममप्रबोग्नि गीतनन्याद्विक्कणभास्मिग्ग ।

पूर्वदिग्गपराग्गभास्मिग्गर्ग अट्टुमं दंयं ॥

वात्तणपराधं जे भास्मिदि स्वे अग्निज्जट्टा इ ।

माणं गणिक्क दीददि न्ददा पणगादिगाग्निमं ॥ ९० ॥

वाग्गण्यपमदं य भास्मिदि मं ९१ - दीददि इ ।

माणं गणिक्क दीददि न्ददा पणगादिगाग्निमं ॥ ९२ ॥

...

बहुवारसु य पणगं मूलगुणं तह य भूलभूर्मा य ।
 दायव्या अणुक्रमसो हरिव सादेज्ज ण ह्ण विरयो ॥ ९२
 बहुवारसु च पनक्त मूलगुण. तथा च मूलभूमिश्च ।
 दातव्या अनुक्रमश. हरित गादयेन रि रितः ॥
 विसमपयवमिदण्डुदभासिद्रूपावलंबणादीहि ।
 भुक्ते सेह गिलाणेणुववासो छट्टमिदराणं ॥ ९३ ॥
 विषमपदवमितनिष्ठयूतभापितकुड्यापलनादिभि ।
 भुक्ते सति म्यानेन उपवाम षष्ठं इतरेषा ॥
 कागादिअंतराय जादे वि परिस्समादिहेदूहि ।
 असमत्थो जदि भुंजदि तस्सुववासो हवदि छेदो ॥ ९४ ॥
 कागाद्यन्तराये जातेऽपि परिश्रमादिहेतुभि ।
 असमर्थो यदि भुनक्ति तस्योपवासो भवति च्छेदः ॥
 गहिदोग्गहम्मि विसरिऊणं पव्भुत्तम्मि होदि उववासो ।
 भोयणकाले णादम्मि अंतरायं खु कादव्वं ॥ ९५ ॥
 गृहीतावग्रहे विस्मृत्य प्रभुक्ते भवत्युपवास ।
 भोजनकाले ज्ञाते अन्तरायः खलु कर्तव्यः ॥
 वेडुंतरायगे संजादे भुक्ते सुदम्मि उववासो ।
 सपडिक्कमणो दिट्टम्मि अप्पणो छट्ट पडिक्कमणं ॥ ९६ ॥
 बृहदन्तरायके संजाते भुक्ते श्रुते उपवासः ।
 सप्रतिक्रमणः दृष्टे स्वयं षष्ठं प्रतिक्रमणं ॥

वियडितृणकाष्ठचालने स्थानान्तरसक्रमे व्युत्सर्गः ॥

रात्रावन्धकारे क्षमण तद्यालने ग्रहणे ॥

उत्पण्णं पि कसाए मिच्छाकारं तकरणे कुज्जा ।

खवणं चाहारत्तं गदे तेण परं मासियं छेदो ॥ १०२ ॥

उत्पन्नेऽपि कपाये मिश्र्याकारं तत्क्षणे कुर्यात् ।

क्षमणं च अहोरात्र गते तेन परं मसिकं छेदः ॥

आदावणणिकस्सेवण—इत्यादाननिक्षेपणासमितिः ।

हरिदतणंकुरवीजाणुच्चारदिस्सु कदेस्स उवरिं तु ।

सालोयणविउसग्गो थोवे खमणं तु बहुवारे ॥ १०३ ॥

हरिततृणाङ्कुरवीजानामुच्चारदिपु कृतेषु उपरि तु ।

सालोचनव्युत्सर्गः स्तोके क्षमण तु बहुवारे ॥

पइश्रावण—इति प्रतिष्ठापनासमितिः ।

अप्पयदपयदचारिस्स परसरसघाणचक्खुसोदाणं ।

अदिचारे इगिवितिचउपंचउववासा विउस्सग्गा ॥ १०४ ॥

१ इदं गाथासूत्रं ख-पुस्ते नास्ति । २ अस्मादग्रे क-पुस्तके अधस्तनवर्ती श्लोकोऽपि विद्यते । ख-पुस्तके तु नास्ति । स च प्रायश्चित्तचूलिकाख्यस्य ग्रन्थस्य सप्ताशीतितमः । तद्यथा ।

तृणकाष्ठकपाटानामुद्घाटनविघटने । २

चतुर्मास्याश्चतुर्थं स्यात् सोपस्थानमवस्थितं ॥

अप्रयत्नप्रयत्नचारिणोः स्पर्शरसघ्राणचक्षुःश्रोत्राणा
अतिचारे एकद्वित्रिचतुःपंचोपवासा व्युत्सर्गाः ॥
इंद्रियरोधं-इतीन्द्रियरोधः ।

मासचतुष्कं लोचो वरिसं च जुगं च जस्स बोलीणो ।
सपडिकमणं खमणं छट्टं तह मासियं छेदो ॥ १०५ ॥
मासचतुष्कं लोचः वर्षं च युगं च यस्य अतिक्रान्तः ।
सप्रतिक्रमणं क्षमणं षष्ठं तथा मासिकं छेदः ॥

अण्णे भणंति चाउम्मासियवरिसियजुगंतपडिकमणे ।
जादं पि जो ण लोचं देवावइ तस्सिमो छेदो ॥ १०६ ॥
अन्ये भणन्ति चतुर्मासिकवार्षिकयुगान्तप्रतिक्रमणे ।
जातमपि यो न लोचं ददाति तस्याय छेदः ॥

सो पुण वाहिगिलाणो जदि णो लोचं करिज्ज उग्घाडं ।
एदं पायच्छित्तं करेज्ज इयरो अणुग्घाडं ॥ १०७ ॥
स पुन व्याधिन्लान यदि नो लोचं करोति उद्दाटं ।
एतत्प्रायश्चित्तं कुर्यात् इतरं अनुद्दाटम् ॥

लोचो वि जदि ण दिण्णो पडिकमणं णिसुणियं ण तद्विसे ।
तो खवणडुगं मासियमुग्घाडं तरं (ह) अणुग्घाडं ॥ १०८ ॥
लोचोऽपि यदि न दत्त प्रतिक्रमणं निश्रुतं न तद्विसे ।
तत क्षमणद्विकं मासिक उद्दाटं तथा अनुद्दाट ॥
लोचो-इति लोच ।

देवगुरुसमयकज्जेहिं जो ण अवस्वित्तमाणसो कुणइ ।
सज्झायचउक्कं नियममेक्कं मथ वंदणं एक्कं ॥ १०९ ॥

देवगुरुसमयकार्ये यः न अवसित्तमानसः करोति ।

स्वाध्यायचतुष्कं नियममेकमथ वन्दनां एकां ॥

पक्खिय अट्टमियं वा किरिया जो चुक्कए खमणमेकं ।

तस्स च्छेदो तिण्णि विउत्सग्गा खलिदसज्झाय ॥ ११० ॥

पाक्षिकां आष्टमिकां वा क्रियां यः भ्रंशति क्षमणमेकं ।

तस्य च्छेदः त्रयो व्युत्सर्गाः स्वल्पितस्वाध्याये ॥

किरियावंदणणियमेसु विउत्सग्गूणएसु विहिण्णसु ।

अकयाए जोगभत्तीए तहा खवणद्धमिह सुद्धी ॥ १११ ॥

क्रियावंदनानियमेषु व्युत्सर्गोन्केषु विहितेषु ।

अकृतायां योगभक्तौ तथा क्षमणाद्धमिह शुद्धिः ॥

पक्खं पडि एक्केक्कं खमणं पडिकमणसुणणसंजुत्तं ।

कायव्वमेव तस्स य वदिकमे दोण्णि उववासा ॥ ११२ ॥

पक्षं प्रति एकैक क्षमण प्रतिक्रमणश्रवणसंयुक्तं ।

कर्तव्यमेव तस्य चातिक्रमे द्वौ उपवासौ ॥

अह पडिकमणं ण सुयं उववासो पुण कउ जदि हवेज्ज ।

तो तस्स पायच्छित्तं दायव्वं एगखमणं तु ॥ ११३ ॥

अथ प्रतिक्रमणं न श्रुतं उपवास पुनः कृतो यदि भवेत् ।

ततः तस्य प्रायश्चित्त दातव्य एकक्षमणं तु ॥

ण सुयाउ जेण पक्खियपडिकमणा तिण्णिआ देउ ।

पक्खतवंपडिकमणपुब्बगं तीदपक्खगणणाए देयं से ॥ ११४ ॥

न श्रुता येन पाक्षिकप्रतिक्रमणा त्रयो दातव्याः ।

पक्षतपः प्रतिक्रमणपूर्वकं अतीतपक्षगणनया देयं तस्य ॥

आसाढे संवच्छरपडिकमणे दिञ्जसु वारस उववासा ।
सिंहाकत्तियपुण्णिमपडिकमणे अट्ट दायव्वा ॥ ११५ ॥

आषाढे संवत्सरप्रतिक्रमणे दीयन्तां द्वादश उपवासाः ।

सितकार्तिकपूर्णिमाप्रतिक्रमणायां अष्टौ दातव्या ॥

फागुणचाउम्मासियपडिकमणे दिञ्ज पोत्तधचउक्कं ।
कत्तियमासे चडुरो विंति परे फग्गुणे अट्ट ॥ ११६ ॥

फाल्गुणत्रातुर्मासिकप्रतिक्रमणाया ददाति प्रोषधचतुष्कं ।

कार्तिकमासे चत्वारः भ्रुवन्ति परे फाल्गुणे अष्टौ ॥

णंदीस्तरपक्खट्टियं पंचमिदिणपहुदिजामपरपक्खे ।

ठियतेरसोत्ति एदम्मि अंतरे कारणवसेण ॥ ११७ ॥

नन्दीस्वरपक्षान्धितं पंचमीदिनप्रभृतियावत्परपक्षे ।

स्थितत्रयोदश इति एतन्मिन्नन्तरे कारणवशेण ॥

वरसिय चाउम्मासिय पडिकमण कप्पदे णिसांमेडुं ।

तत्तो परं सुणंतस्स तप्पडिककमणसुणणजुदा ॥ ११८ ॥

वार्षिकीं चातुर्मासिकीं प्रतिक्रमणां कल्पते निशामयितुं ।

ततः परं शृण्वतः तत्प्रतिक्रमणश्रवणयुक्ता ॥

वारस अट्ट च चडुरो उववासा विगुणिऊण दायव्वा ।

पक्खियपायच्छित्तं पक्खगर्णणाए दायव्वं ॥ ११९ ॥

१ कत्तियपुण्णिमपडिकमणे उववासा अट्ट दायव्वा इति स-पुस्तके पाठान्तरम् ।

२ पक्खिय. स. । ३ णिसांमेह स. । ४ पक्खगणने च दायव्वा, स.

द्वादश अष्टौ च चत्वार उपवासा द्विगुणीकृत्य दातव्याः ।
पाक्षिकप्रायश्चित्त पाक्षिकगणनया दातव्य ॥

जो पक्षमासचउमासवरिसमावासयं सुसंखितं ।
कुण्ड य पेक्षस्वयमणुमोदण सयं काउमसमत्थो ॥ १२० ॥

यः पक्षमासचतुर्मासवर्ष आवश्यक सुसंक्षिप्तं ।
करोति च दृष्टा अनुमोदयेत् स्वयं कर्तुमसमर्थः ॥

प्रायश्चित्तं कमसो स्वमणं पणयं च पंचकल्याणं ।
गुरुमासचउक्कं पि य दायव्वं से गिलाणस्स ॥ १२१ ॥

प्रायश्चित्त क्रमशः क्षमण पंचकं च पंचकल्याण ।
गुरुमासचतुष्कं अपि च दातव्यं तस्य म्लानस्य ॥

आवासयपरिहीणो इगिदुगमासे य वाहिदप्पेहिं ।
तो तस्स हवे छेदो लहुगुरुआमासचउमासा ॥ १२२ ॥

आवश्यकपरिहीनः एकद्विमासे च व्याधिदर्पाम्या ।
तर्हि तस्य भवेच्छेदः लग्नगुरुकमासचतुर्मासाः ॥

आवासयपरिहीणो जो उण उभयत्थ वुत्तंकालादो ।
उक्कंस्सादो परदो दायव्वा मूलभूमिति ॥ १२३ ॥

आवश्यकपरिहीनः यः पुनः उभयत्र उक्तकालत ।

उत्कृष्टतः परतः दातव्या मूलभूमिरिति ॥

आवासयं—इत्यावश्यक ।

१ परपक्षय. ख । २ इगिदुगमासेहिं ख । ३ सुत्यकालादो. क । ४ अयं
माथासूत्रस्योत्तरार्ध. क-पुस्तके नास्ति, ख-पुस्तकाद् संयोजितः । ५ इदमपि
क-पुस्तके नास्ति, ख-पुस्तके त्वस्ति ।

उवंसग्गदो अणारोगदो कारणवसेण दप्पादो ।

गिहिवण्णतित्थिल्लिगग्गहणेणाचेलवदभंगे ॥ १२४ ॥

उपसर्गतः अनारोगतः कारणवशेन दर्पितः ।

गृह्यन्यतीर्थलिङ्गग्रहणेन अत्रेत्त्रतभंगे ॥

जादे पायच्छित्तं क्षमणं छट्ठं कमेण संठाणं ।

मूलं पि च जणणादे दायव्वं एगवारम्मि ॥ १२५ ॥

जाते प्रायश्चित्तं क्षमणं षष्ठं क्रमेण संन्यानं ।

मूलमपि च जनजाते दातव्यं एकवारे ॥

अत्रेत्त्रं—इत्थचेत्त्रं ।

पहाणे दंतग्घस्सणे गिहसज्जाए च रायदो सयणे ।

इगिवारे कल्लाणं बहुवारे पंचकल्लाणं ॥ १२६ ॥

नाने दन्तवर्षणे गृहिशय्यायां च रागतः शयने ।

एकवारे कल्याणं बहुवारे पंचकल्याणं ॥

अत्राण अदंतवरा खिदिसेज्जा—इत्थल्लनं अदन्तननं इतिगया ।

ठिदिभोयणेगमत्ते जांए दप्पेण एगवहुवारे ।

भग्गम्मि पणगमासिगदिवसंतवछेदमूलखिदी ॥ १२७ ॥

स्थितिभोजनैकभक्ते जाते दप्पेण एकवहुवारे ।

भग्ने पंचकमासिकदिवसतपच्छेदमूलहितयः ॥

ठिदिभेयणेगन्तं—इति स्थितिभोजनैकभक्ते ।

१ अयं पूर्वार्धः क-पुलक्रेणिति, ख-पुलकाद् संयोजितः । २ गिह्य ख ।
३ अदंतपत्तन ख । ४ खिदिस्सयनं ख । ५ खए ख । ख्या ।

इन्द्रियसमिद्धिअदंतवणलोचखिदिसयणभंजणे चेर्यं ।
काउस्सग्गुववासा सेसाणं भंजणे तह यं ॥ १२८ ॥

इन्द्रियसमित्यदन्तमनलोचक्षितिशयनभजने चैव ।

कायोत्सर्गोपवासौ शेषाणां भंजने तथा च ॥

मूलगुणा—इति मूलगुणा ।

तरुमूलथिरादावणजोगे भग्गम्मि सप्पडिक्कमणे ।

एयंतरोववासा चउरो मासा य दायव्वा ॥ १२९ ॥

तरुमूलस्थिरातापनयोगे भगे सप्रतिक्रमणाः ।

एकान्तरोपवासाः चत्वारो मासाश्च द्रातव्याः ॥

अण्णे भणंति जोगावसेसद्विसावसाणसमउत्ति ।

एयंतरोववासा सपडिक्कमणा य दायव्वा ॥ १३० ॥

अन्ये भणति योगावशेषद्विसावसानसमय इति ।

एकान्तरोपवासाः सप्रतिक्रमणाश्च द्रातव्याः ॥

तरुमूलजोगभग्गं रोगिगं णिसाए जणेषु सुत्तेसु ।

गुत्तेण वसहिअट्ठभंतरम्मि सो-वाविऊण गणी ॥ १३१ ॥

तरुमूलयोगभग्नं रोगाङ्गं ? निशि जनेषु सुत्तेषु ।

गुप्तेन वसत्यभन्तरे स-आनीय ? गणी ॥

णीहारइ तेसु अणुंठिएसु जादि रोगपसवणदिणंतं ।

तो तस्स हवादि छेदो सपडिक्कमणं तु मूलगुणं ॥ १३२ ॥

१ असइ ख । २ मूलं ख । ३ मणा ख । ४ जोगिग क । ५ अणिठिएसु क ।
दिणता ख ।

नीहारयति तेषु अनुष्ठितेषु यदि रोगप्रशमनदिनान्तं ।
तर्हि तस्य भवति छेदः सप्रतिक्रमणं तु मूलगुण ॥

जो रुक्खमूलजोगी तद्गुणं गच्छदे ण वेलाए ।
सालोयणविउसग्गो पायच्छित्तं हवे तस्स ॥ १३३ ॥

य वृक्षमूलयोगी तत्स्थान गच्छति न वेलायां ।
सालोचनन्युत्सर्गः प्रायश्चित्तं भवेत्तस्य ॥

तरुमूलवभोवासयतोरणठाणादिजोगसंजुत्तो ।
अण्णस्स अप्पणो वा वेज्जावच्चादिकरण्हं ॥ १३४ ॥

तरुमूलभ्रावकाशतोरणस्थानादियोगसंयुक्तः ।
अन्यस्य आत्मनो वा वैयावृत्यादिकरणार्थं ॥

जदि एग निसं वसहियमज्झे सो वसेदि तर्हा य दायव्वं ।
पायच्छित्तं तस्स इ सपडिक्कमणं खमणमेगं ॥ १३५ ॥

यदि एकां निशां वसतिमध्ये स वसति तथा च दातव्यं ।
प्रायश्चित्तं तस्य तु सप्रतिक्रमणं क्षमणमेकं ॥

अथिरादावणवभोवगासजोगम्मि भग्गए छेदो ।
मूलगुणं पडिक्कमणं पुरोगपरदेशगमणं च ॥ १३६ ॥

अथिरातापनावभ्रावकशयोगे भग्ने छेदः ।
मूलगुणं प्रतिक्रमणं पुरोगपरदेशगमनं च ॥

ठाणासणादिजोगे णिरवधिगे सव्वहा वि परिचत्ते ।
पायच्छित्तं कल्लाणपंचयं सपडिक्कमणं ॥ १३७ ॥

यदि पुनः परवादिविवादकरणसंन्याससंघकार्याणि ।
जातानि भवन्ति वर्षाकालयोगस्य मध्ये ॥

तो देसंतरगमणं वि ण पट्विसिद्धं हवे सुविहिदाणं ।
सयलरित्तिसंघसभयकज्जं करणिज्जमेव जदो ॥ १४३ ॥

तर्हि देशान्तरगमनमपि न प्रतिसिद्धं भवेत् सुविहितानां ।
सकलर्षिसंघसमयकार्यं करणीयमेव यतः ॥

वारहजोयणमज्झे जादे सहेहणम्मि साहूहिं ।
एगगामियभोयणसयणाइं अकुणमाणेहिं ॥ १४४ ॥

द्वादशयोजनमध्ये जातायां सहेत्रवनायां साधुभिः ।
एकग्रामिकभोजनशयने अकुर्वाणैः ॥

जोगे गहिदम्मि वरिसयालमज्झिम्मि होदि गंतव्वं ।
तेणेव कमेणागंतव्वं एसा पुराणठिदी ॥ १४५ ॥

योगे गृहीते वर्षाकालमध्ये भवति गन्तव्यं ।
तेनैव क्रमेणागन्तव्यं एषा पुराणस्थितिः ॥

संण्णासणकाले पुण जायंतो मुणिवरो जदि पछेज्ज ।
कइविसूचियादीहिं मलहरणं तस्स दायव्वं ॥ १४६ ॥

संन्यासकाले पुनः याचमानो मुनिवरो यदि दृश्येत ।
कृतविसूचिकादिभिः मलहरणं तस्य दातव्यं ॥

पट्टमे पक्खे पणगं अंतिमपक्खेण दोण्णि उचवासा ।
मज्जिमपक्खेसु पुणो दायव्वो दोण्णि पणगं तु ॥ १४७ ॥

प्रथमे पक्षे पंचकं अतिमपक्षेन द्वौ उपवासौ ।

मध्यमपक्षेषु पुनः दातव्ये द्वे पंचके ॥

एगं णिसन्नदी सतु ? रोधणरोगादिकारणवसेण ।

अन्नत्थ वरिसयाले जदि वसदि मुणी तदा तस्स ॥ १४८ ॥

एकत्र निष्ण. सन्: रोधनरोगादिकारणवशेन ।

अन्यत्र वर्षाकाले यदि वसति मुनिस्तदा तस्य ॥

अण्णेहिं अविण्णादे देयं पडिकमणमेयखमणं च ।

णादे आदिमअंतिममज्झिमपक्खुत्तमलहरणं ॥ १४९ ॥

अन्यैरविज्ञाते देयं प्रतिक्रमणं एकक्षमणं च ।

ज्ञाते आदिमान्तिममध्यमपक्षोक्तमलहरण ॥

सल्लेहणस्स पक्खे खमियस्स परीसहेहिं भग्गस्स ।

अण्णं पाणं जाचतयस्स गणिणा वि कुसलेण ॥ १५० ॥

सल्लेखनायाः पक्षे क्षमितस्य परीषहैः भग्नस्य ।

अत्र पान याचमानस्य गणिनापि कुशलेन ॥

पच्छण्णेण अधिच्चतम्मि दिणम्मि सपडिकमणं ।

उट्ठिदिणिविट्ठभोजिस्स दिवा खमणं च छट्ठहुगं ॥ १५१ ॥

प्रच्छन्नेन अधित्यक्ते २ दिने सप्रतिक्रमणं ।

उत्थितनिविष्टभोजिनः दिवा क्षमणं च पष्ठद्विकम् ॥

उट्ठिदिणिविट्ठभोजिस्स अण्णेहिं विजाणिदस्स दिवसम्मि ।

लहुमासो गुरुमासो रयणिभोजिस्स पुव्वुत्तं ॥ १५२ ॥

उत्थितनिविष्टभोजिनः अन्यैः विज्ञातस्य दिवसे ।

लघुमास. गुल्मासः रजनीभोजिन. पूर्वोक्तं ॥

उत्तरगुणं-इत्युत्तरगुणा ।

अण्णाणअहंकारेहिं एगवहुवारमासए छेदो ।

अप्पासुगे वसंतस्सुववासो पणय मासिगं मूलं ॥१५३॥

अज्ञानाहंकाराभ्यां एकवहुवारमाश्रित्य छेदः ।

अप्रासुके वसतः उपवासः पंचकं मासिकं मूलं ॥

अण्णाणधम्मगारवहेदूहिं गामपुरघरारंभे ।

भासंतस्सुवसोही पणगं संठाणगं मूलं ॥ १५४ ॥

अज्ञानधर्मगर्वहेतुभिः ग्रामपुरगृहारंभान् ।

भाषमाणस्योपशुद्धि. पंचकं संस्थानकं मूलं ॥

पूजारंभं जो कारवेदि अण्णाणदो गिहत्थेहिं ।

इगिवारे सालोयण विउत्तग्गो खमणमेगं तुं ॥ १५५ ॥

पूजारंभं य कारयति अज्ञानतो गृहत्थैः ।

एकवारे सालोचनः व्युत्सर्गः क्षमणमेकं तु ॥

बहुवारेसु य पणगं सपडिक्कमणं तु तस्स दायव्वं ।

जाणंतस्सिगिवारे सपडिक्कमणं पणगमेगं ॥ १५६ ॥

बहुवारेषु च पंचकं सप्रतिक्रमणं तु तस्य दातव्यं ।

जानानस्य एकवारे सप्रतिक्रमणं पंचकमेकं ॥

१ अण्णाणधम्मगारवेदिं यदि गामपुरघरारंभं इति क-पुस्तके पाठः । २ वा. ख ।

बहुवारे गुरुमासो दायव्वो तस्स पडिकमणं ।

छज्जीवणिकायाणं बहूण घायम्मि मूलखिदी ॥ १५७ ॥

बहुवारे गुरुमासो दातव्यस्तस्य सप्रतिक्रमणः ।

पङ्जीवनिकायानां बहूना घाते मूलक्षितिः ॥

तित्थयरादीणमवण्णवादिणो संघस्से अयसकारिस्स ।

पट्ठभट्टवदसमासेविणाय खमणं सपडिक्कमणं ॥ १५८ ॥

तीर्थकरादीनामवर्णनादिने सघस्य अयशस्कारिणे ।

प्रभ्रष्टव्रतममासेविने क्षमण सप्रतिक्रमण ॥

वाहिपडिकारहेदुं वमणं च विरेयणं सिरावेधं ।

णियदेहे काराविदग्गुणिणो छट्टत्तवं छेदो ॥ १५९ ॥

व्याधिप्रतिकारहेतु वमन च विरेचनं च सिरावेध ।

निजदेहे कारापितमुनये पष्टतपः छेदः ॥

अण्णं भणंति ऐदं पायच्छित्तं सक्कप्पदांसस्स ।

धृत्तं पमादजावस्स हाइ एयस्स अद्धमिदि ॥ १६० ॥

अन्ये भणन्ति एतत्प्रायश्चित्तं सदर्पादोपम्य ।

उक्तं प्रमादजातस्य भवति एतस्य अर्वामिति ॥

जो वमणपट्टवद घेचूण संजदो विहारिज्ज ।

पायच्छित्तं तस्स य मूळगुणं हाइ दायव्वं ॥ १६१ ॥

य. दर्शनभ्रष्ट आक्षय मयत. विहंगत् ।

प्र.यच्छित्तं तस्य च मुद्राण भवति दानस्य ॥

विज्ञाचोच्चणिमित्तं मंत्रं चुण्णाणि मूलकैमणं च ।
जो कुणदि साद्रेहेडुं तत्सुववात्तो तपडिकमणो ॥ १६२ ॥
विद्यातोघनिमित्तं मंत्रं चूर्णानि मूलकर्म च ।
य करोति साद्रेहेतुं तन्योपवामः सप्रतिक्रमणः ॥

सालोयणविउस्तगो सुत्तत्यं चोरियाए गेण्हंतो ।
पुच्छाविणयविहीणो दिंतो वि य पुच्छमगणंतो ॥ १६३ ॥
सालेचनन्युत्सर्ग सूत्रार्थं चुर्या गृह्णन् ।
पृच्छाविणयविहीनं ददन् अपि च पृच्छामगणयन् ॥

सुत्तत्यसुवदित्तंतो अस्तमाहिं सिक्खयाण जो कुणइ ।
सुदगुरनिण्हवगो जो तस्त य खमणं हवदि छेदो ॥ १६४ ॥
सूत्रार्थमुपदिशन् अस्तमाधिं शिष्याणां यः करोति ।
श्रुतगुरनिण्हवको य तस्य च क्षमणं भवति छेदः ॥

सिक्खंतो सुत्तत्यं अणिमादो चैव गच्छदि परत्यं ।
कोहादिकारणेहिं तस्त चउत्यं हवे छेदो ॥ १६५ ॥
शिक्षन् सूत्रार्थं अनियमतं चैव गच्छति परत्र ।
क्रोधादिकारणैः तस्य चतुर्थं भवेच्छेदः ॥

संधारमत्तोहितस्त पयइअपयइचारिणो होतिं ।
खमणद्धं खमणं च य अण्णे खमणं च पणगं च ॥ १६६ ॥
संतरमशोषयतः प्रयत्नप्रयत्नचारिणः भवति ।
क्षमणार्थं क्षमणं च च अन्यन्मिन् क्षमणं च पंचकं च ॥

१ मूलकर्म च. ख । २ न्देहेडुं. क । ३ दिदि. ख । ददाति । ४ चैव.
ख । चैव ।

पण्डे अयउवयरणे तस्सुच्छेहंगुलप्पमाणाइं ।
खवणाइं देति केई घणंगुलपमाणाइं परे ॥ १६७ ॥

नष्टे अयउपकरणे तस्योत्सेधाङ्गुलप्रमाणानि ।
क्षमणानि ददति केचित् घनाङ्गुलप्रमाणानि परे ॥

जिणपडिमागमपोच्छयणासे खमणादिपगकल्लाणं ।
मणिरयणकणयपडिमाणासे पणगादिमासियं छेदो ॥ १६८ ॥

जिनप्रतिमागमपुस्तकनाशे क्षमणाद्येककल्याण ।
मणिरत्नकनकप्रतिमानाशे पंचकादिमासिकं छेदः ॥

सेसुवयरणविणासे रूवादीणं च घादकरणे य ।
काउस्सग्गो छेदो मणहुप्परिणामकरणे य ॥ १६९ ॥

शोपोपकरणविनाशे रूपादीना च घातकरणे च ।
कायोत्सर्गं छेदः मनोदुप्परिणामकरणे च ॥

जिं वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायावा ।
तंसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव ससि (सु) ङ्गी ॥ १७० ॥

येऽपि च अन्यगणतः निजगणे अव्ययनहेतुना आयाताः ।
तेषामपि तादृशानां आलोचना एव सशुद्धिः ॥

आयरियादिर्निर्सीहि य आणाधियदीवयपवंचेण ।
खण्णासादिणिमित्तं जिणभवणं जइ पमाएण ॥ १७१ ॥

आचार्यादि—ऋषिभिः आज्ञापितदीपकप्रपञ्चन ।
सन्यासादिनिमित्तं जिनभवनं यदि प्रमादेन ॥

१ १६६ मायासूत्रं ख-गुणदे १६१ मायासूत्रा. पू. ११२ मायासूत्राय पयः
वन्ते । ३ १६६ मायासूत्रं ख-गुणदेऽयं स्थले नास्ति ।

दृष्टं हवेज्ज तो तो पक्खुववासं करेज्ज संघवई ।
तिणि पडिकमणां पंच पंच उववात्तपरियंतै ॥ १७२ ॥

दग्धं भवेत्तर्हि स पक्षोपवासं कुर्यान् संवपतिः ।

तिव्र. प्रतिक्रमणा पंचपंचोपवासपर्यन्ताः ॥

अह जइ सत्तिविहीणो तो तिणिण डुवालत्ताइं कुणउ मुणी ।
तिणि पडिकमणंताइं तप्पडिवद्धो तवो अहवा ॥ १७३ ॥

अथ यदि शक्तिविहीन तर्हि त्रीन् उपवामान् करोतु मुनिः ।

त्रीणि प्रतिक्रमाणान्तानि तत्प्रतिबद्धं तपोऽथवा ॥

शुद्धिर्वा-इति शूलिका ।

आलोचण पडिकमणो उभय विवेगो तथा विडस्सग्गो ।
तव परियायच्छेदो मूलं परिहार सटहणा ॥ १७४ ॥

आलोचना प्रतिक्रमण उभय विवेक तथा व्युत्कर्ष ।

तप पर्यायच्छेद मूल परिहार श्रद्धान ॥

एवं दसविध सम्य पायच्छित्तं रिसीरणे भणियं ।

तं केरिसेसु दोसेसु जायदे इदि परासेसो ॥ १७५ ॥

एव दसाविध सम्ये प्रायश्चित्त उ-पिगणेन भणितम् ।

तत् केरिसेसु दोसेसु जायते इति प्रजापत्यम् ॥

आदायणादिलोमगाहणं उच्छ्वासगाहिकमणं वा ।

गणितमपदसभादीणि अनुच्छन्नालेण जेज हदं । १७६ ।

१ तिणि, २ । २ एज्जे २ । ३ उ । ४ । ५ इतिवद्धो ६ मुणी ७
८ ७३ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

ण्ठे अयउचयरणे तस्सुच्छेहंगुलप्पमाणां ।
 खवणां देति केई घणंगुलपमाणां परे ॥ १६७ ॥
 नष्टे अयउपकरणे तस्योत्सेधाङ्गुलप्रमाणानि ।
 क्षमणानि ददति केचित् घनाङ्गुलप्रमाणानि परे ॥
 जिणपडिमागमपोच्छयणासे खमणादिपगकल्लाणं ।
 मणिरयणकणयपडिमाणासे पणगादिमासियं छेदो ॥ १६८ ॥
 जिनप्रतिमागमपुस्तकनाशे क्षमणाद्येककल्याणं ।
 मणिरत्नकनकप्रतिमानाशे पंचकादिमासिकं छेदः ॥
 सेसुवयरणविणासे ख्वादीणं च घादकरणे य ।
 काउस्सग्गो छेदो मणहुप्परिणामकरणे य ॥ १६९ ॥
 शेषोपकरणविनाशे रूपादीना च घातकरणे च ।
 कायोत्सर्गः छेदः मनोदुप्परिणामकरणे च ॥
 जं वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेडुणायावा ।
 तंसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव संसि (सु) ङ्गी ॥ १७० ॥
 येऽपि च अन्यगणतः निजगणे अव्ययनहेतुना आयाताः ।
 तेषामपि तादृशाना आलोचना एव सशुद्धिः ॥
 आयरियादिनिर्सादि य आणाधियदीवयपयंचेण ।
 सुण्णासादिणिमित्तं जिणभवणं जइ पमापण ॥ १७१ ॥
 आचार्यादि—ऋषिभिः अज्ञापितदीपकप्रपञ्चन ।
 सन्यासादिनिमित्तं तिनभवणं र्याद प्रमादेन ॥

. १ इह मायासूत्रं स्व-मुद्रा १६१ मायासूत्रं पूर्ण १९९ मायासूत्राय पद्य-
 कर्तृत्वे । ३ इह मायासूत्रं स्व-मुद्रा १६१ स्वके नास्ति ।

आतापनादियोगग्रहणं उन्नामकादिगमनं वा ।

गणिगणवृषभादीनां अपृच्छमानेन येन कृतं ॥

पोत्थयपिच्छकमंडलुवक्कलयादि परेसिमुवयरणं ।
तेसिं परोक्खदो णियकज्जेणुवभोगियं जेण ॥ १७७ ॥

पुस्तकपिच्छकाकमंडलुवल्कलादि परेषां उपकरणं ।

तेषां परोक्षतः निजकार्येण उपभोगितं येन ॥

गणहरवसहादीनां भणियं ण कयं पमाददोसेण ।

सो आलोयणमित्तेण सुज्झए गुरुसयासम्हि ॥ १७८ ॥

गणधरवृषभादीनां भणितं न कृतं प्रमाददोषेण ।

स आलोचनामात्रेण शुद्धयति गुरुसकारे ॥

जे गच्छादो संहांहिवादिकज्जेण निग्गया मुणिणो ।

पंचसमिदा तिगुत्ता जिदिदियपरीसहा वीरा ॥ १७९ ॥

ये गच्छतः संवाधिपतिकार्येण निर्गता मुनय ।

पंचसमिताः त्रिगुप्ता जितेन्द्रियपरीषहा वीरा ॥

पंथादिचारपमुहादिचारं संसोधया हु तद्वियहं ।

तेसिं पुणागयाणं आलोयणमेव संसोही ॥ १८० ॥

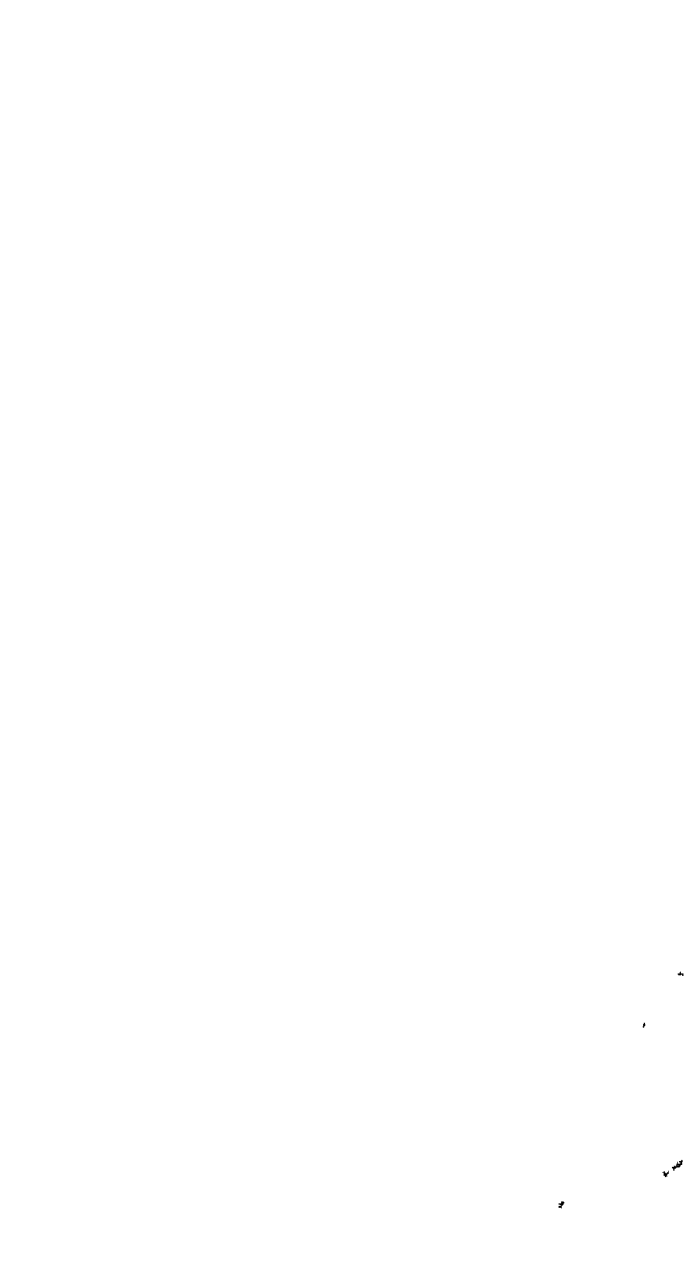
पथ्यतिचारप्रमुखातिचारं सशोधका हि तद्विस ।

तेषां पुनरागतानां आलोचनमेव सशुद्धिः ॥

जे वि य अप्पणगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायादा ।

तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव ससुद्धी ॥ १८१ ॥

१ पमाददो जेण. ख। प्रमादत येन। २ घा. सा। ३ वीरा. ख। ४ इदं
गाथामूढं पूर्वमपि (१८०) आगतं ।



चर्कित्वादिद्यादिदुष्परिणामे पेषुष्णकलहअभक्खाणे ।

वेजाविद्यपमादे सज्ज्ञायज्ञाणवाघादे ॥ १८६ ॥

चक्षुरिन्द्रियादिदुष्परिणामे पैशून्यकलहाभ्याख्याने ।

वैयावृत्यप्रमादे स्वाभ्यायाध्ययनव्याघाते ॥

गोचरगयरस लिंगुट्टाणे अण्णरस संकिलेसे य ।

णिंक्वणगरहणजुत्तो णियमो वि य होदि पडिकमणं ॥ १८७ ॥

गोचरगतस्य लिंगोत्थाने अन्यस्य सक्लेशे च ।

निन्दनगर्हणयुक्त. नियमोऽपि भवति प्रतिक्रमण ॥

पडिकमणो—इति प्रतिक्रमणं ।

लाचणहउवसुमिणिंदिद्यादिचारंगकोरगमणेसु ।

समिणजिदिभोयणे वि य णियमो आळोयणा उभयं ॥ १८८ ॥

अचनननउदममोन्द्रियातिनारैकसोशगमनेषु ।

ममनिशिमोनेत्रेण च नियम आल्यचना उभयं ॥

परिभयया उम्मानियमवच्छरियानिनेमसुच्छियरं ।

माशययापुदरुदर परिउक्रमणोणसामणं उभय ॥ १८९ ॥

पारिभययुमोणिकममममिमादिदोपुच्छियरं ।

माशययुदरुदर शरिणममोणिसामणं उभय ॥

उभय = १८९ ।

विद्वान्निन्दन्नामो अनाममाजय मीदि अशुद्धाजा ।

विद्विद्वानो नदा जाइ नाण विद्वमो परिआमां ॥ १९० ॥



ससिणिद्धभूमिगमणे हरिदतणादीणमुवारि चंकमिदे ।

पंकवभंतरगमणे जाणुमिदजलप्पवेसे य ॥ १९५ ॥

सस्निग्धभूमिगमने हरिततृणादीनामुपरि चंक्रमिते ।

पंकाम्यन्तरगमने जानुमितजलप्रवेशे च ॥

अण्णणिमित्तपउंजिददोणीणावादिणा णदीतरणे ।

उच्चारं पस्सवणं काऊणं उववासयागमणे ॥ १९६ ॥

अन्यनिमित्तप्रयुक्तद्रोणीनावादिना नदीतरणे ।

उच्चारं प्रस्सवणं कृत्वा उपवासकागमने ॥

पोत्थयजिणपडिमाफोडंणम्मि पंचविहथावरविधादे ।

रत्तीए असमदेखिददेसे तणुमलविसग्गे य ॥ १९७ ॥

पुस्तकजिनप्रतिमास्फोटने पचविधस्थावरविधाते ।

रात्रौ अदृष्टदेशे तनुमलविसर्गे च ॥

एक्को काउस्सग्गो पायच्छित्तं जिणेहिं पण्णत्तं ।

वित्तिचउरिंदियघादे वियतियचउरो विउस्सग्गा ॥ १९८ ॥

एक. कायोत्सर्गं प्रायश्चित्तं जिनैः प्रज्ञप्तं ।

द्वित्रिचतुर्गिन्द्रियघाते द्विकत्रिकचत्वारो व्युत्सर्गाः ॥

उज्जोए पडिलिहियं दाउं संघारयं णिसि पसुत्तो ।

उच्चत्तणपरियत्तणणिगमणवियज्जिदो पयदां ॥ १९९ ॥

उद्यंते प्रतिलेखित्त आदाय सम्मरक निशि प्रमुत्तः ।

उद्धर्तनपरिवर्तननिर्गमनविधर्मितः प्रयत्नः ॥

जदि संथारसमीवे पेच्छइ पंचिदियं मुदं स्रुदये ।

तो तस्स हवे छेदो पंचविउस्सग्गपरिमाणो ॥ २०० ॥

यदि संस्तरसमीपे प्रेक्षते पंचेन्द्रिय मृतं सूर्योदये ।

तर्हि तस्य भवेच्छेदः पंचन्युत्सर्गपरिमाणः ॥

दिवसियरादियपक्खियचउमासियवरिसयादिकिरियाण ।

चरिमे ऊणक्खूणणिमित्त एगो विउस्सग्गो ॥ २०१ ॥

द्वैवसिरात्रिकपाक्षिकत्रानुर्मासिकवार्षिकादिक्रियाणां ।

चरमे ऊनाधिक्यनिमित्त एको व्युत्सर्ग ॥

सिद्धंतसुणणवक्खाणावसाने अंगपट्टुदिपुव्वाणं ।

परियट्टुणावसाने ऊणखूणणिमित्तं विउस्सग्गो ॥ २०२ ॥

सिद्धान्तश्रवणव्याग्न्यानावसाने अगप्रभृतिपूर्वाणां ।

परिवर्तनावसाने ऊनाधिक्यनिमित्त व्युत्सर्गः ॥

विउस्सग्गो इति व्युत्सर्ग ।

जिच्चियडी पुरिमंडल आयंदिलमेयठाण खमणमिदि ।

एसो तवोत्ति भणिओ तदोदिराणप्पराणेदि ॥ २०३ ॥

निर्विकृतिः पुरिमंडल आचारं एकस्थान क्षमणमिति ।

एतत्तप इति भणितं तपोविधानप्रधानं ॥

पुध पुध वा मिस्सो वा उग्घाटो वा तरा अणुग्घाटो ।

छम्मासेदि य परदो णत्थि तदो दीरज्जित्तिन्दे ॥ २०४ ॥

प्रथक् पृथग्वा मिश्र वा उद्धाट वा तथा अनुद्धाट ।

पण्मासैश्च परतः नास्ति तपो वीरजिनतीर्थे ॥

उग्घाटो संतरिदो वीसमणजुदो तदण्णहा इदरो ।

वाहिगिलाणादीणं पढमो इदराण पुण इदरो ॥ २०५ ॥

उद्धाटं सान्तरितं विश्रमणयुक्त तदन्यथा इतरत् ।

व्याधिगलानादीना प्रथमं इतरेषा पुनः इतरत् ॥

उच्चत्तण परियत्तण कंडूवण उंटणं पसारणयं ।

कुव्वंतो अपमज्जिददेहो पणयारिहो होइं ॥ २०६ ॥

उद्वर्तनं परिवर्तनं कंडूयनं आकुंचन प्रसारण ।

कुर्वन् अप्रमार्जितदेहः पंचकार्हो भवति ॥

कुडुं खंभं भूमिं वक्कलयादीण अप्पडिलिहित्ता ।

आमासइ उट्टंघइ वइसइ तो होइ पणयं से ॥ २०७ ॥

कुडुं स्तम्भ भूमि वक्कलदींश्च अप्रतिलिख्य ।

आश्रयति उत्तिष्ठति वसति तर्हि भवति पंचकं तस्य ॥

वियडिं तिण कटुं वा रादो व दिया व अप्पडिलिहित्ता ।

गेण्हंतो चालंतो पणयारिहो कप्पववहारे ॥ २०८ ॥

वियडिं तृण काष्ठं वा रात्रौ दिवि वा अप्रतिलिख्य ।

गृह्णन् चालयन् पंचकार्हः कल्पव्यवहारे ॥

उच्चारं पस्सवणं कलिं च पासाणवियडियादीयं ।

अपमज्जिददेसम्मि विक्किंचंतो होइ पणयारिहो ॥ २०९ ॥

उच्चरं प्रत्रवणं कलिं च पापाणवियडिकादिकं ।

अप्रमार्जितदेशे विकुर्वन् भवति पंचकार्हः ॥

कंटय कलिं च पासाणछल्लितणकट्टुखप्परादीयं ।

अंगुलिणहदंतेहिं छिंदंतो होइ पणयरिहो ॥ २१० ॥

कंटकान् कलिं च पापाणत्वक्कृणकाष्ठसर्परादिकं ।

अंगुलिनखदन्तै. छिन्दन् भवति पंचकार्हः ॥

पायच्छित्तं दिण्णं कुव्वंतो जदा अतरिज्ज रोगेण ।

तो णीरोगो संतो पणयरिहो कप्पववहारे ॥ २११ ॥

प्रायश्चित्तं दत्तं कुर्वन् यदा अन्तरियात् रोगेण ।

तर्हि नीरोगं मनं पंचकार्हं. कल्पव्यवहारे ॥

पायच्छित्तं दिण्णं कुव्वंतो जो सदेसपरदेसे ।

गुरुकज्जं साधिज्जो महहयं तस्स आयस्स ॥ २१२ ॥

प्रायश्चित्तं दत्तं कुर्वन् यं न्वदेशपरदेशे ।

गुरुकार्यं नाधयति महन् नम्य आगतम्य ॥

पुव्वदिण्णं पायच्छित्तं छंटादिऊण पणयं तु ।

दायव्यमेव गुरुणा इय भणियं कप्पववहारे ॥ २१३ ॥

पूर्वप्रदत्तं प्रायश्चित्तं त्याजयित्वा पंचकं तु ।

दानव्यमेव गुरुणा इति भणितं कल्पव्यवहारे ॥

उप्पण्णं पि कस्ताप मिच्छावारो न तस्सणे कुज्जा ।

पणय मारोत्तगदे तेण परं नाखियं छेदो ॥ २१४ ॥

चतुषष्टिः गुरुमासाः गोक्षयमातंगखटिकादीनां ।

निर्ग्रन्थदीक्षादाने प्रायश्चित्तं समुद्दिष्टं ॥

कप्पव्ववहारे पुण छम्मासोहिं परं तु णत्थि तथो ।

इह वड्डमाणत्तित्थे तेण य छम्मासियं दिण्णं ॥ २२५ ॥

कल्पव्यवहारे पुनः षण्मासैः पर तु नास्ति तपः ।

इह वर्धमानतीर्थे तेन च षण्मासिकं दत्तं ॥

छम्मासियं-इति षण्मासिक ।

अण्णं वि य मूलत्तरगुणादिचारेसु पुव्वमवि य तथो ।

बुत्तो जहारिहमिदो पुरिसे अधिकिच्चं पुण भणिमो ॥ २२६ ॥

अन्यदपि च मूलत्तरगुणातिचारेषु पूर्वमपि च तपः ।

उक्तं यथार्हं इतः पुरुषान् अधिकृत्य पुनः भणामः ॥

आगाढाधञ्चपयत्तचारिअणुविचिणो सपड्डिवक्खा ।

(अट्ट णरा होंति पुणो सोलसधा अक्खसंचारे ॥ २२७ ॥

आगाढ.....प्रयत्नचार्यनुवीचीकाः सप्रतिपक्षाः ।

अष्टौ नरा भवन्ति पुनः षोडशधा अक्षसंचारे ॥

१ अविच्छिद्यमिह भणिमो, क । २ वय, ख । ३ यणुवीचीणो ख । ४ अस्मा-
दग्रे ख-पुम्नेके इदं गाथासूत्रं उपलभ्यते ।

प्रथमकाले अतगदे आदिगदे सङ्गमे (दि) विदियक्तो ।

द्विष्णि वि गतूणं आदिगदं सङ्गमदि (तदि) यक्खो ॥

प्रथमात्रे अन्नगते आद्यागते मन्दागते द्वितीयादा ।

द्वितीये गत्वान्नं आद्यागते सङ्गमति तृतीयादा ॥

गाथेयं गोम्मटसारेऽपि वर्तते प्रमादमध्यागणनावसरे ।

प्रथमा द्वितीया तृतीया चतुर्थी पंचमी षष्ठी त्रयोदशमी ।

सप्तमी अष्टमी नवदशमी अपि च पचदशमी एव ॥

णवदसपञ्चारसमी य वारसमी तह य चैव सोलसमी ।

अट्टारसमी द्वावीसिमा य पुणु वीसिमा चैव ॥ २३९ ॥

नवदशैकादशमी च द्वादशमी तथा चैव षोडशी ।

अष्टादशमी द्वाविंशतितमी च पुन विंशतितमी एव ॥

सत्तारसमी एगृणवीसिमा य चउर्वासा ।

इगिर्वासविमा तेर्वासिमा य छुर्वीन्ततीन्दिमा ॥ २४० ॥

सप्तदशी एकोनविंशतितमी च चतुर्विंशतितमी ।

एकविंशतितमी त्रयोविंशतितमी च षट्त्रिंशतिविंशतितमी ।

सत्तार्वासविमा वि य अट्टावीसा य ऊणवीसविमा

इगतीन्दिमा य इमा मिसुत्तल याड अदुष्टं ॥ २४१ ॥

सप्तविंशतितमी अपि च अष्टविंशतितमी त्रयोविंशतितमी ।

एकविंशतितमी च इमा मिसुत्तल अट्टान् ॥

अप्यप्यपोन गणापट्टिद्वहृत्तद वारितु एवम् ।

सद्वत् २ वि तदसंज्ञा दादया इ ति मत्वेण । २४२

सप्तदशान् सप्तविंशतितमं चतुर्विंशतितमं ।

सप्तविंशतितमं त्रयोविंशतितमं षट्त्रिंशतितमं ।

— — —

तदभूतिमदिज्ञानो मृतस्य य जो ए संदना ।

सं परिगारसंज्ञा दादचित्तं सहति ॥ २४३

तपोभूमिमातिक्रामन् मूलस्थान च यः न संप्राप्तः ।

तस्य पर्यायच्छेदः प्रायश्चित्त समुद्दिष्टं ॥

णियगच्छादो णिग्गय एगागी विहरिऊण पुण आणं ।

जेत्तियकालप्रमाणा पव्वज्जा छिज्जए तस्स ॥ २४४ ॥

निजगच्छतो निर्गत्य एकाकी विहत्य पुनः आगमन ।

यावत्कालप्रमाणा प्रव्रज्या छिद्यते तस्य ॥

पुवं जहुत्तचारी पच्छा पासत्थभावमुववण्णो ।

जेत्तियेकालं विहरदि मुक्कधुरो सो समण्णं पुणो ॥ २४५ ॥

पूर्व यथोक्तचारी पश्चात् पार्श्वस्थभावमुपपन्नः ।

यावत्कालं विहरति मुक्तधुरः स श्रमणः पुनः ॥

तेत्तियकालप्रमाणा पव्वज्जा तस्स छिज्जदि जदिस्स ।

पासत्थभावमुक्कुकुस्सुववण्णसुणिम्मलचरित्तं ॥ २४६ ॥

तावत्कालप्रमाणा प्रव्रज्या तस्य छिद्यते यते ।

पार्श्वस्थभावमुक्तस्य उत्पन्नसुनिर्मलचरित्रस्य ॥

तस्सिसाणं सोही सगणत्थीइरियणाभगहणेण ।

लोचं काऊण तदो पठिकमणं कुणउ ण हु अण्णं ॥ २४७ ॥

तस्य शिष्यानां शुद्धि स्वगणस्थाचार्यनामग्रहणेन ।

लोचं कृत्वा तदा प्रतिक्रमणं करोतु न हि अन्यत् ॥

पासत्थादीहिं समं आचरंतो सगिप्पमादेण ।

छम्मासब्भंतरदो जदि तदोसे णिसेवदि सो ॥ २४८ ॥

पश्चम्यादिभि र्नाम अत्रान् स्वस्वमदेन ।

गन्तव्यमन्तर्गतो यदि तद्विद्येत् निमित्तो न ॥

तो से तवत्ता सुद्धी उन्मातेहि परं तु कायत्वा ।

तं पञ्चजालेदो सुदुःखमुवागयत्त पुणो ॥ २४६ ॥

तर्हि तस्य तस्मा सुद्धि पञ्चमै परं तु कर्त्तव्य ।

तत्रैतन्मद्देदो सुदुःखमुवागयत्त पुनः ॥

कलहं काजप समापयन्काजप एगद्विदित रिती ।

जदि वसदि जिग्रगते तस्य पंचदिवसित्यतश्छेदो ॥ २४७ ॥

कनह कृत्वा तस्मान् अकृत्वा एगद्विदित् अग्नि ।

यदि वसति निजगते तस्य पंचद्वैदमित्कतश्छेदो ॥

पलाययित्वा दिवाण वन आदयित्वा पञ्चरत्नद्विदित्वा ।

छिञ्चति परणपयन्त पुन वनपञ्चरत्नदीप्तदिवा । २४८ ॥

एतन्मद्वैदं विना वनात्तस्मै पंचद्वैदित्कनि

पिण्डो परणपयन्त पुन वनपञ्चरत्नद्वैदित्कनि ।

एतं जेनियद्विदित्वा अग्नादिना रण्य परणये वा ।

अथ्यति ततो तेनियद्विदित्कपुणो वाप तद्द्वैदो । २४९ ॥

एतं पञ्चद्वैदित्कनि अग्नात्तद्द्वैदं वापये वापये वा ।

पिण्डो वाप अग्निद्वैदं ते वापयेः ।

२५० ॥ वाप

लो अग्निदिग्द्वैदये तद्द्वैदं विना सुदुःखमुवागयति ।

तद्द्वैदं वापयेत तन्मिदं विद्वाद्द्वैदं परम ॥ २५३ ॥

योऽपगमितपराधः तपश्छेदेन विना शुद्धिमुपयाति ।
सभागकरणयोग्य मूलक्षिति दीयते तस्य ॥

पंचमहव्यदभट्टो छावासयवज्जिदो णिरणुतावी ।
उस्सुत्तकारउ तह सच्छंदो मूलरिदिमेदि ॥ २५४ ॥

पत्रमहात्रतभ्रष्ट. पडावश्यकवर्जित. निरनुतापी ।

उत्तमूत्रकारकः तथा स्वच्छंदः मूलक्षितिमेति ॥

पासत्थादी चउरो तप्पासे जे परे च पव्वददा ।
ते सव्वे वि य मूलहाणं पावांति हु णिवत्ता ॥ २५५ ॥

पार्श्वस्थादयश्चत्वार तत्पार्श्वे ये परे च प्रव्रजिताः ।

ते सर्वेऽपि च मूलस्थान प्राप्नुवन्ति हि निवृत्ताः ॥

तस्सिस्साणं सुद्धी सगणत्थायरियणामगहणेण ।
लोच्चं काऊण तदो पडिकमणं कुणह ण हु अण्णं ॥ २५६ ॥

तच्छिप्याना शुद्धिः स्वगणस्थाचार्यनामग्रहणेन ।

लोच कृत्वा ततः प्रतिक्रमण करोतु न हि अन्यत् ॥

संधाहिवस्स मूलं पत्तस्स वि दिज्जदे ण मूलखिदी ।

उद्धाहपसमणत्थं बहुजणमाधारदाण्या ॥ २५७ ॥

सधाधिपतेः मूल प्राप्तस्य अपि न दीयते मूलक्षितिः ।

उद्धाहप्रशमनार्थं बहुजनमाधारदायकाः ॥

जदि आयरिओ छेदं च मूलभूमि च पत्तओ मरणं ।

तो तस्स जहाजोगं छेदं मूलं च दायव्वं ॥ २५८ ॥

१ इदं गाधामत्र रा-ग पुस्तके नास्ति । पूर्वमप्यागतं ५२ पृष्ठे ।

यदि आचार्यः छेद मूलभूमि च प्राप्त. मरणं ।

तर्हि तस्य यथायोन्य छेदः मूल च दातव्य ॥

कालम्नि असंपदुत्ते पत्तो छेदं च मूलभूमिं च

जादि आयरिओ तो से तवसुद्धी चेष दायव्वा ॥ २५९ ॥

कालेऽसप्राप्ते प्राप्त. छेदं च मूलभूमिं च ।

यदि आचार्यः तर्हि तस्य तप शुद्धि. चैव दातव्या ॥

विज्जदि तवो वि संठाणादीहम्मासखमणपेरंतो ।

अवि सत्तमारुपेरंतो वा अण्णं ण दायव्दं ॥ २६० ॥

दीयते तपोऽपि संन्यानादिषम्मामसमणपर्यन्त ।

अपि सप्तमासपर्यन्त वा अन्यत्र दातव्यं ॥

आयरियस्स इ मूलं दितो सयमेव मूलभूमी सो ।

पावदि उट्टाहकरो धम्मत्त जसोवहकरो सो ॥ २६१ ॥

आचार्यस्य तु मूलं ददन् स्वयमेव मूलभूमिं न ।

प्राप्नोति उट्टाहकरः धर्मन्य यगोवधकर न ॥

मूल-इति मूलम् ।

मूलखिदी बोलीणो सहसंभोगस्स जो द जांगो इ ।

सो पावदि परिहारं पायच्छित्तं ति दिति जिणा ॥ २६२ ॥

मूलक्षितिं त्यक्त्वा सहसंभोगस्य यद्य (अ) योन्यस्तु ।

न प्राप्नोति परिहारं प्रायश्चित्त इति व्रुवन्ति जिनाः ॥

तं पि अ अणुपडावणपारंचिगभेदो एव इदिहं ।

सगणपरगणविभेदेणित् अणुपडावणं इदिहं ॥ २६३ ॥

श्राद्धशर्धान् एव मौनवती पच पंच उपव्रामान ।
 कृत्वा न पाग्यन् गमयति जयन्त्येन न माधुः ॥

उद्धसेणं छुहम्मासे उववासिऊण पारितो ।

गमद वरिसाणि वारिस अणुपट्टवगो गणणिवद्धो ॥ २६९ ॥

उत्कृष्टेन पम्पामान् उपोत्र्य पारयन् ।

गमयति वर्षाणि द्वादश अनुपस्थापको गणनिवद्धः ॥

नगणो-इति स्वगणानुपस्थानम् ।

परगणअणुपट्टवगो वि एरिसो चेष किं तु जम्मि गणे ।

उप्पण्णा ते दोसा दप्पादीएहि पुव्वुत्ता ॥ २७० ॥

परगणानुपस्थापकोऽपि एतादृशश्चैव किन्तु यस्मिन् गणे ।

उत्पन्ना ते दोषा दर्पादिकैः पूर्वोक्ता ।

तेणाचरिएण य सो परगणमणुपट्टविज्जदे साहू ।

तत्थतणाइरियंते आलोचदि सो तदो दोसे ॥ २७१ ॥

तेनान्त्येण च स परगणं अनुपस्थाप्यते माधुः ।

तत्रत्याचार्यान्ते आलोचयति स तत दोषान् ॥

आलोचणं सुणित्ता पायच्छित्तं ण दिंतएण पुणो ।

तेण वि आयरिएणं अण्णत्थणुपट्टविज्जदि जदि सो ॥ २७२ ॥

आलोचन श्रुत्वा प्रायश्चित्तं न ददता पुनः ।

तेनापि आचार्येण अन्यत्र अनुपस्थाप्यते यतिः सः ॥

तेण वि अण्णत्थेवं तिण्णिण य चत्तारिपंचहस्तत्ता ।

आयरियाण समीवे अणुपट्टाविज्जदे कमसो ॥ २७३ ॥

तेनापि अन्यत्रैव त्रिचतु.पंचषट्सप्ताना ।

आचार्याणा ममीपे अनुपस्थाप्यते क्रमशः ॥

पच्छिमगणिणा वि पुणो पुव्वुत्तालोच्चिदायरियपासं ।

अणुपट्टुविदो संतो णियंत्तिदूणोदि तप्पासं ॥ २७४ ॥

पश्चिमगणिनापि पुनः पूर्वोक्तालेचिताचार्यपार्श्व ।

अनुपस्थापितः सन् निवृत्यैति तत्पार्श्व ॥

सो वि जहणं मज्झिमसुक्कसं वा पुरोदिदं छेदं ।

दाउं तस्सायरिओ चरावण पुव्वविधिणेञ्च ॥ २७५ ॥

सोऽपि जवन्य मध्यमं उत्कृष्ट वा पुरोदित छेदं ।

दत्त्वा तस्मै आचार्य. चारयति पूर्वविधिनैव ॥

परगण—इति परगणानुपस्थानम् ।

तित्थयरगणधराणं आयरियाणं महद्धिपत्ताणं ।

संघस्स पवयणस्स य आसादणकारओ पावो ॥ २७६ ॥

तीर्थकरगणधराणा आचार्याणा महद्धिप्राप्ताना ।

सवम्य प्रवचनम्य च आसादनाकारक पाप ॥

रायापराधकारी रायामञ्चाण तह य वदंनो ।

रायग्गमहिसिपडिसेवगो य धम्मदुहो तह य ॥ २७७ ॥

राजापराधकारी राजमात्यान् तथा च वन्दमान ॥

राजाग्रमहिपीप्रतिसेवकश्च धर्मधुक् तथा च ॥

जो एवविहदोसो चाउव्वण्णस्स सवणसंघस्स ।

मज्झम्मि पंचतालं दाऊणं सां संघहवाहिरओ ॥ २७८ ॥

य एवविधोपः चातुर्वर्ण्यस्य श्रमणस्यस्य ।

मध्ये पंचताल दत्त्वा स संघवाह्यः ॥

एतो अवंदणिलो पंचमहापादगोत्ति घोसित्ता ।

पायच्छित्तं द्वाडं सदेसद्वे घाडिद्वे संतो ॥ २७९ ॥

एष अवन्दनीय पंचमहापातकीति धोषयित्वा ।

प्रायश्चित्तं दत्त्वा स्वदेशतो व्राटित सन् ॥

गत्तुण अण्णदेस्ते जत्थ य धम्मं ण चाणए लोओ ।

तत्थत्थिज्जण पायच्छित्तं आचरउ गणिदिण्णं ॥ २८० ॥

गत्त्वा अन्यदेशे यत्र च धर्मं न जानाति लोकः ।

तत्र स्थित्वा प्रायश्चित्तं आचरतु गणिदत्तम् ॥

तं पुण सपरगणट्टियअणुपट्टवगस्स जारिसं डिण्णं ।

तारिसमेवेदस्स वि जहण्णहुदस्समिदरं वा ॥ २८१ ॥

तत्पुन स्वपरगणस्थितानुसन्धापकम्य यादश दत्त ।

तादशमेवैतन्थापि जयन्य उट्टट्ट इतरत्ता ॥

पारं अंचदि परदेशमेदि गच्छदि जद्वे तद्वे एतो ।

पारंचिगोत्ति भण्णदि पायच्छित्तं जिणमदम्मि ॥ २८२ ॥

पार अंचति परदेशमेति गच्छति यत्तन्त एष ।

पारञ्चिक इति भग्यते प्रायश्चित्तं जिणमते ॥

एदं पायच्छित्तं कप्पव्ववहारभास्सिद भणियं ।

जीदे विसएवविधी णदारि सतशोभास्सि तादिच्छगुरुमात्ता २८३

एवं प्रायश्चित्तं कल्पव्यवहारभाषितं भणितं ।

जीते अपि स एव विधिः नवरि सतस मामिकदिप्रदुग्न्मामाः ॥

आदितिगसंघट्टणो भवर्भास्य जिह्वरीसहो धीरो ।
गीवत्थो वृद्धधम्मो चरेदि पारंच्चिगं भिक्षु ॥ २८४ ॥

आश्रितिसहनन. भाभीरुः जितपरीपहः धीर. ।

गीतार्थ. वृद्धधर्मा नरति पारथिक भिक्षुः ॥

पारंनिग-इति पारथिक ।

परिणामपद्यण सम्मत्त उज्जिऊण मिच्छत्तं ।
पट्टिवज्जिऊण पुणरवि परिणामवसेण सां जीवो ॥ २८५ ॥

परिणामप्रत्ययेन सम्यक्त्व उज्जित्वा मिथ्यात्व ।

प्रतिपद्य पुनरपि परिणामवशेन स जीवः

णिदणगरहणजुत्तो णियत्तिऊणो पट्टिविज्ज सम्मत्तं ।
जं तं पायच्छित्त सदहणासण्णिद हांदि ॥ २८६ ॥

निन्दनगर्हणयुक्तः निर्वर्त्य पतिपद्यते सम्यक्त्वं ।

यत्तत्प्रायश्चित्त श्रद्धानसङ्गित भवति ॥

जदि पुण विराहिऊण धम्म मिच्छत्तमुवगमो होदि ।
तो तस्स मूलभूमी दायव्वा लोयविदिदस्स ॥ २८७ ॥

यदि पुनः विराध्य धर्म मिथ्यात्वमुपगमो भवति ।

तर्हि तस्य मूलभूमिः दातव्या लोकविदितस्य ॥

सदहणा-इति श्रद्धानम् ।

एवं दसविधपायच्छित्त भणियं तु कप्पववहारे ।
जीवम्मि पुरिसभेद णाउं दायव्वमिदि भणियं ॥ २८८ ॥

उद्दपिण्डम् ।

एवं दशविवप्रायश्चित्तं भगित्तु कल्पन्यवहारे ।

जीते पुरुषभेदं ज्ञान्वा दातव्यमिति भगित्तं ॥

निमित्तादच्छित्तं-इति ऋषिप्रायश्चित्तं गमामम् ।

जं समणाणं बुद्धं पायच्छित्तं तद्द ज्ञमाचरण
तेसिं चैव पउत्तं तं समणीणांपि णायव्वं ॥ २८९ ॥

यत् श्रमणानामुक्तं प्रायश्चित्तं तथा यत् आचरणम् ।

तेषां चैव प्रोक्तं तत् श्रमणीनामपि ज्ञातव्यम् ॥

णवरि परियायच्छेदो नृलट्टाणं तद्देव परिहारो ।

दिणपडिमा वि य तीसं तियालजोगो य णेवत्थि ॥ २ ॥

नवरि पर्यायच्छेदो मूलन्यानं तथैव परिहारः ।

दिनप्रतिमापि च तासां त्रिकालयोगश्च नैवास्ति ॥

थिरअथिराणज्जाणं प्रमाददप्पोहिं एगवहुवारं ।

सामाचारदिचारे पायच्छित्तं इमं भणियं ॥ २९१ ॥

थिराथिराणानार्याणां प्रमाददर्शान्यां एकवहुवारम् ।

सामाचारातिचारे प्रायश्चित्तं इदं भगित्तम् ॥

काउस्तगो खमणं खमणं पणगं च पणग छट्टं च ।

छट्टं तद्देव मात्तिगमेवमिस्तीणं पि दायव्वं ॥ २९२ ॥

कार्योत्सर्गः क्षमणं क्षमणं पंचकं च पंचकं षष्ठं च ।

षष्ठं तथैव मासिकमेवं ऋषीणामपि दातव्यम् ॥

एकस्त वत्थजुयलस्सेक्कस्त गोणिया एककंयाए ।

पासुगजलेण पक्खालणम्मि एक्को विउस्तगो ॥ २९३ ॥

आदितिगसंघदणो भवभीरुः जिदपरीसहो धीरो ।
गीदत्थो दृढधम्मो चरेदि पारंछिग भिक्खु ॥ २८४

आदिमत्रिसहनन. भवभीरुः जितपरापहः धीरः ।

गीतार्थः दृढधर्मा चरति पारश्चिक भिक्षुः ॥

पारश्चिग-इति पारश्चिक ।

परिणामपच्चएणं सम्मत्त उज्झिऊण मिच्छत्तं ।
पडिविज्जिऊण पुणरवि परिणामवसेण सो जीदं

परिणामप्रत्ययेन सम्यक्त्व उज्झित्वा मिथ्यात्व

प्रतिपद्य पुनरपि परिणामवशेन स जीवः

णिदणगरहणजुत्तो णियत्तिऊणो पडिविज्ज २
जं त पायच्छित्त सद्दहणासण्णिदं हादि ॥ २

निन्दनगर्हणयुक्तः निर्वर्त्य पतिपद्यते सम्यक्

यत्तप्रायश्चित्त श्रद्धानसङ्गित भवति ॥

जदि पुण विराहिऊणं धम्म मिच्छत्तमुवगमो
तो तस्स मूलभूमि दायच्चा लोयविदिदस्स ॥ २

यदि पुनः विराध्य धर्म मिथ्यात्वमुपगमो भवति ।

तर्हि तस्य मूलभूमिः दातव्या लोकविदितस्य ॥

सद्दहणा-इति श्रद्धानम् ।

एवं दसविधपायच्छित्त भणियं तु कप्पववहारे ।
जीदम्मि पुरिसभेद णाउं दायन्वमिदि भणियं ॥ २८८ ॥

पुत्रवती यदि विरती जायते ततः करोतु त्रीणि दिवसानि ।
आत्राम्निर्विद्वृतीनमगाना एकतरकं तु ॥

सज्जायदेवद्वंद्वं गणियमादियाओ सव्वकिरियाओ ।
मोणेण कुणउ तिण्णि वि दिणाणि तो हरियदिवसम्मि ॥२९९॥

न्वा गायदेववदननियमादिका सर्वक्रिया ।
मौनेन करोतु त्रीण्यपि दिनानि ततः तुरियदिवसे ॥

पच्छण्णए पएस्ते पासुगसलिलेण एगकलसेण ।
पक्खालिद्रूण गत्त गुरुमूले गिण्हडु वडाइं ॥ ३०० ॥

प्रच्छन्ने प्रदेशे प्राशुकमल्लिलेन एककलसेन ।
प्रक्षाल्य गात्रं गुरुमूले गृह्णातु व्रतानि ॥

जदि पुण चंडालादी छिविज्ज विरती कहिं पि विरदो वा ।
तो जलण्हाण किच्चा उववासं तट्टिणे कुणउ ॥ ३०१ ॥

यदि पुन चाडालादीन् मृशेन् विरती कथमपि विरतो वा ।
तहिं जलम्नानं कृत्वा उपनाम तदिने करोतु ॥

जलवदमंतेहि हवे ण्हाण तिविहं तु तत्थ जलण्हाणं ।
गिहिणो विरदाणं पुण ददमंतेहिं पुणो कहियं ॥ ३०२ ॥

जलव्रतमत्रैः भवेन् न्नानं त्रिविधं तु तत्र जलम्नानम् ।
गृहिणो विरतानां पुनः व्रतमत्राभ्यां पुनः कथितम् ॥

मनोमीर्णं न्मन्त-इति श्रमणीनां समाप्तम् ।

एकस्य वत्त्रयुगलस्य एकस्या गौणिकायाः एककथायाः ।
प्रासुकजलेन प्रक्षालने एको व्युत्सर्गः ॥

अप्पासुगजलपक्षालणम्मि एगो हवेइ उववासो ।
पत्तादीणं पक्षालणे वि णादूण दायद्वं ॥ २९४ ॥

अप्रासुकजलप्रक्षालने एको भवति उपवासः ।

पात्रादीना प्रक्षालनेऽपि ज्ञात्वा दातव्यम् ॥

पहरेणेक्केणखया सिपिजंती जलेण पहरेणं ।
अवरेणेणंतिम्मं इमट्टिया जा जिणायदणे ॥ २९५ ॥

.. ।

... .. ॥

लावाविज्जइ जइ सा कुट्टादीएसु इट्टयाणं वा ।
वेण्णिसहस्सा तो से छट्ठाइं वेण्णि पडिकमणं ॥ २९६ ॥

लागयति यदि सा कुट्ट्यादिकेषु इष्टकान् वा ।

द्विसहस्राणि पष्ठानि द्वे प्रतिक्रमणे ॥

एवं मट्टियजलपरिमाणे णादूणे थोवमिदरं वा ।
अण्णत्थ वि दायद्वं पायच्छित्तं जहाजोगं ॥ २९७ ॥

एवं मृत्तिकामलपरिमाणे ज्ञात्वा स्तोत्रे इतरद्वा ।

अन्यत्रापि दातव्यं प्रायश्चित्तं यथायोग्यम् ॥

पुष्कवदी यदि विरदी जायदि तो कुणउ तिण्णि दिवसाणि ।
आयंविळणिद्वियदीखमणाणं एक्कदरं तु ॥ २९८ ॥

तेषिह स्वपचारण जणमणोचज्जणं गिहन्येण ॥

काऊण दोससुद्धी अणुद्वियच्चा पयत्तेण ॥ ३१९ ॥

तेनेह सर्वप्रकाणं जनननोवर्जनं गृहन्येन ।

कृत्वा औषशुद्धिं अनुष्ठातन्या प्रयत्नेन ॥

उरपरिस्तप्पादीणं घाटे जादम्मि तिण्णि उववात्ता ।

णिदिट्ठा गिहिवग्गस्स छेदववहारकुशलैहिं ॥ ३२० ॥

उरपरिस्पर्शानां वाते जाते त्रय उपवामाः ।

निर्दिष्टा गृहिर्गान्य छेदव्यवहारकुशलैः ॥

वियल्लिदियाणं घाटे काउस्तग्गा तदिद्वियपमाणा ।

इह पुण काउस्तग्गो अट्टसयउस्तात्तपरिमाणो ॥ ३२१ ॥

विकलेन्द्रियाणां वाते कायोत्मर्गा तदिन्द्रियप्रमाणा ।

इह पुन कायोत्मर्गं अट्टमतोच्छ्रामपरिमाणं ।

विरदाणं पि महव्वयकयादिचारस्त एट्टहो च्चैव ।

काउस्तग्गो अणत्थ पुव्वभणित्थे त्ति वित्ति परे ॥ ३२२ ॥

विरदानामपि महान्तकृतातिचाराणां एतावानेव ।

कायोत्मर्गा अन्यत्र पूर्वभगित इति ब्रुवन्ति परे ॥

अण्णा वि अत्थि अणुगुणसिक्खवावयाइं सणादिचाराणं ।

गिहिणो सोही य तं पि य संखेवेणं पवक्खामि ॥ ३२३ ॥

अन्यापि अस्ति अणुगुणशिनात्रनदर्शनातिचाराणं ।

गृहिणां शुद्धिश्च तामपि च संक्षेपेण प्रवञ्चामि ॥

पंचतिचउत्विहाइं अणुगुणसिक्खवावयाइं होंति तर्हि ।

एक्केके अदिचारा पंचेव अदिक्कमादीया ॥ ३२४ ॥

जिनभवनाङ्गणदेशे गोमयगोमूत्रद्रुग्धदधिभिः ।

घृतसहितैः कारापयित्वा सप्तमहामण्डलानि स्फुट ॥

तो तं मुडियसीसं वइसारिय मंडलेसु छसु कमसो ।

जलपंचदध्वघयदाहिपयगंधजलाहि पुण्णेहि ॥ ३१४ ॥

ततः त मुडितशीर्षे वेशयित्वा मडलेषु षट्मु क्रमशः ।

जलपचद्रव्यघृतदधिपयोगन्धजलैः पूर्णैः ॥

वरवारणहिं समं अहिंसिचिय संघसंतिघोसेण ।

पच्छा सत्तममंडलठियस्स से संघसमवाओ ॥ ३१५ ॥

वरवारिभि समं अभिषिच्य संवशान्तिघोषेण ।

पश्चात् सप्तमण्डलस्थितस्य तस्य संघसमवार्यं ॥

जलपुष्पकखयसेसादाणेहि परममंगलासीहिं ।

अहिणंदिंयंगसोहिं देउ फुडं जिणय्यत्तमेओ ॥ ३१६ ॥

जलपुष्पाक्षतशेषादानैः परममगलाशीर्षिभिः ।

अभिनदिताङ्गशुद्धि ददातु स्फुट जिनव्रतसमेता ॥

तो णियभवणपइट्ठो जिणमहिमं संघभोयणं कुणज ।

लोयाण चित्तग्रहणं च वत्थधणभोयणादीहिं ॥ ३१७ ॥

ततः निजभवनप्रविष्ट जिनमहिमा संघभोजनं करोतु ।

लोकाना चित्तग्रहणं च वस्त्रधनभोजनादिभिः ॥

पाओ लोओ चित्तं तस्स मणोचित्तगाहयं कम्मं ।

लोयस्स जं तमेव हि पायच्छित्तं ति जिणवुत्तं ॥ ३१८ ॥

प्रायो लोको चित्तं तस्य मनः चित्तग्राहकं कर्म ।

लोकस्य यत्तदेव हि प्रायश्चित्तमिति जिनोक्तम् ॥

तेषां नद्वयस्यास्य जणमणोरप्यस्य गितस्य ॥

काञ्चन दान्तमुद्गी अपुद्गियदा पयन्ते ॥ ३१७ ॥

नेनह मर्गप्रयत्नं य जननेवर्जनं गृह्येन ।

कृता मीपयति तनुष्टान्त्या प्रयत्नेन ॥

उरपरिन्तुपार्दीण धाटं जादम्भि तिण्ण उचयास्ता ।

णिदिहा गिरिचग्गरस छेद्वयदारकुमलेहि ॥ ३२० ॥

उरपरिन्तुपार्दीना यते जाते त्रय उपवामाः ।

निदिष्टा गृहिर्गन्ध च्छेद्वयपहाङ्कुर्गले ॥

विचलिदियाण धाडे काउरसग्गा तदिदियपमाणा ।

इह पुण काउरसग्गो अहुमयउस्तासपरिमाणो ॥ ३२१ ॥

विकलेन्द्रियाणा यते कायोन्मर्गा तदिन्द्रियप्रमाणा ।

इह पुन. कायोन्मर्ग अट्टशानोच्छ्वापपरिमाण ।

विरदाणं पि महद्वयकयादिचारस्त एदहो चव ।

काउस्तग्गो अण्णत्थ पुद्वभणिशो त्ति विति परे ॥ ३२२ ॥

विरतानामपि महान्तकृतातिचाराणा एतावानेव ।

कायोन्मर्ग. अन्यत्र पूर्वभणिन इति ब्रुवन्ति परे ॥

अण्णा वि अत्थि अणुगुणसिक्खावयदंसणादिचाराणं ।

गिहिणो सोही य तं पि य सखेवेण पवक्खामि ॥ ३२३ ॥

अन्यापि अस्ति अणुगुणाशिसाव्रतदर्शनातिचाराणा ।

गृहिणां शुद्धिश्च तामपि च सत्तेपेण प्रवन्त्यामि ॥

पंचतिचउद्विहाडं अणुगुणसिक्खावयाइं होति तहिं ।

एकैके अदिचारा पंचेव अदिक्कमादीया ॥ ३२४ ॥